

अथ मोदी कथा

सर्वहारा प्रकाशन

प्रकाशक की ओर से

नरेन्द्र मोदी के शासन को एक वर्ष से अधिक समय बीत चुका है। नरेन्द्र मोदी के गुजरात से दिल्ली तक यात्रा में ऐसे कई पड़ाव रहे हैं जिन्हें नहीं भुलाया जा सकता है। हिन्दू फासीवादी आंदोलन के इस नायक का भारत का प्रधानमंत्री बनना सीधे इस बात का ध्योतक है कि संकटग्रस्त भारतीय पूंजीवाद के संचालक वर्ग- एकाधिकारी पूंजीपति वर्ग ने स्वयं आगे बढ़कर नरेन्द्र मोदी का मार्ग प्रशस्त किया।

‘नागरिक’ पाक्षिक अखबार (www.enagrik.com) नरेन्द्र मोदी की इस यात्रा का साक्षी रहा है। पहले दिन से ही हिन्दू फासीवादी आंदोलन के इस नायक की हरकतों व मंसूबों का खुला आलोचक रहा है। इस पूरे दौरान ‘नागरिक’ में कई महत्वपूर्ण लेख व सम्पादकीय नरेन्द्र मोदी के ऊपर लिखे गये। प्रस्तुत पुस्तिका ऐसे ही लेखों का एक संकलन है।

हिन्दू फासीवादी आंदोलन को शिकस्त देने की लड़ाई लड़ने वाले सभी यौद्धाओं के लिए यह पुस्तिका, पठनीय और उपयोगी होगी, इस आशा से हम इसे प्रकाशित कर रहे हैं।

सितम्बर, 2015

प्रकाशक
सर्वहारा प्रकाशन

विषय सूची

पृष्ठ संख्या

1. नरभक्षियों, यह तुम्हारा समय है	01
2. गुजरात में मोदी ने मरघट की शांति कायम ही है	02
3. मोदी का राष्ट्रवाद और देशभक्ति	04
4. जैसी प्रजा वैसा राजा	05
5. अधिनायकवादी मुख्य कार्यकारी अधिकारी का सामाजिक आधार	06
6. रंगा-बिल्ला, अंबानी-अदानी और मोदी-शाह	08
7. ओबामा, मोदी और गणतंत्र दिवस	10
8. संघ और मोदी का विज्ञान	11
9. मोदी की भाजपा सरकार के एक साल	12
10. 'अच्छे दिनों का जश्न' या झूठ-फरेब की मार्केटिंग	14
11. भारतीय संस्कृति, योग और बाबा-मोदी	16
12. मोदी सरकार द्वारा मजदूरों पर भीषण हमला	18
13. प्रतिक्रियावाद की आंधी	20

नरभक्षियो, यह तुम्हारा समय है

हमारा समय विडम्बनाओं का समय है। इनमें से एक विडम्बना यह है कि दुनिया की वे दो कौमें जो इतिहास में सबसे ज्यादा प्रताड़ित होने का दावा करती रही हैं, वे आज सबसे बड़े उत्पीड़कों के रूप में सामने आ रही हैं और ऐसा वे आज भी उत्पीड़न का शिकार होने और उसका प्रतिरोध करने के नाम पर कर रही हैं।

ये दो कौमें हैं- भारत के हिन्दू(या ज्यादा सही कहें तो सवर्ण हिन्दू) और इजरायल की यहूदी। भारत के (सवर्ण) हिन्दू और उनके झंडाबरदार दावा करते रहे हैं कि वे पिछले हजार सालों से मुसलमानों द्वारा उत्पीड़ित रहे हैं। वे इस बात से इंकार करते रहे हैं कि वस्तुतः इतिहास में जो कुछ हुआ वह मुस्लिम शासकों द्वारा आम जनता का उत्पीड़न था जिसमें किंचित धर्म का पुट था। आज वे उस पूरे इतिहास का बदला लेना चाहते हैं।

इनके बरक्स यहूदी हैं जो वस्तुतः इतिहास में पिछले दो हजार साल से उत्पीड़ित रहे तथा दर-ब-दर भटकते रहे हैं। इस सबकी चरम परिणति हिटलर के गैस चैम्बरों में हुयी। सारी दुनिया की जनता की सहानुभूति से निर्मित यहूदियों का राष्ट्र इजरायल आज अपनी बारी में सारे कर्ज उतार देना चाहता है।

यह मात्र संयोग नहीं है कि हिन्दू नरेन्द्र मोदी तथा यहूदी एरियल शेरोन दोनों एक साथ नरभक्षी होकर मुस्लिम जनता पर टूट पड़े हैं। इनमें से पहला अपने देश की जनता को ही खा रहा है तो दूसरा एक ऐसे देश की जनता को जिसका बंटवारा कर उसके देश का निर्माण किया गया तथा जिसके और ज्यादा हिस्सों पर वह कब्जा करता चला गया है।

इन दोनों ही नरभक्षियों को आज दुनिया की एकमात्र महाशक्ति, दुनिया के स्वनामधन्य थानेदार अमरीकी साम्राज्यवाद का बरदहस्त प्राप्त है। दोनों ही आश्वस्त हैं कि आतंकवाद विरोध का बहाना बनाकर अमरीकी व अन्य साम्राज्यवादी इस नरसंहार की तरफ से आंखें मूंद लेंगे। हो भी यही रहा है।

गुजरात के मुख्यमंत्री नरेन्द्र मोदी वे शख्स हैं जिन्हें तमाम भारतीय कानूनों (पोटा सहित)के तहत सलाखों के पीछे कैद होकर अपनी मृत्यु का इंतजार करना चाहिए था। ये वे शख्स हैं जिन पर मानव संहार के लिए हिटलर के सहयोगियों की तरह अंतर्राष्ट्रीय न्यायालयों में मुकदमा चलाकर वहीं भेज दिया जाना चाहिए था जहां हिटलर और उसके सहयोगी चले गये।

लेकिन यह सब होने के बदले यह शख्स गुजरात की मुख्यमंत्री की कुर्सी पर विराजमान है और अपने विरोधियों की ओर देखकर कुटिल भाव से विराजमान है। राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग, राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग जैसी सरकारी संस्थाएं और गुजरात के सरकारी अफसर चीख-चीख कर इसके गुनाहों की कहानी सुना रहे हैं और यह शख्स मजबूती से अपनी गद्दी पर जमा हुआ है।

इस शख्स की मजबूती का राज क्या है? इसकी मजबूती का वही राज है जो हिटलर का था। हिटलर भी चुनावों के जरिये सत्ता में आया था और वह भी महज एक तिहाई वोट पाकर। एक तिहाई मत के बाद भी वह सत्तारूढ़ हो गया तो केवल इस कारण कि तब जर्मनी की सामाजिक जनवादी पार्टी अपने अस्तित्व के लिए बड़ा खतरा कम्युनिस्ट पार्टी को मानती थी, वह अपने को बचाये रखने के लिए, सत्ता में बने रहने के लिए हिटलर को सहने को तैयार थी। उसके बाद का इतिहास दुनिया जानती है।

आज भारत में केन्द्र सरकार में सहयोगी राजग की अन्य पार्टियां वही भूमिका निभा रही हैं जो जर्मनी में सामाजिक जनवादी पार्टी ने निभाई थी। ये किसी भी तरह सत्ता से चिपके रहने के लिए, सत्ता सुख बचाये रखने के लिए नरेन्द्र मोदी और उनके मंत्रिमण्डल के अन्य नरभक्षियों को सहने को तैयार हैं।

यही नहीं विपक्षी पार्टियों की भूमिका भी इनसे ज्यादा भिन्न नहीं है। कांग्रेस पार्टी का व्यवहार बहुत साफ तौर पर दिखाता है कि वह हिन्दू साम्प्रदायिक मानसिकता के खिलाफ जाने को तैयार नहीं है।

बात यह नहीं है कि नरेन्द्र मोदी जैसे पक्के संघी वाजपेयी जैसे उदार भाजपाइयों के बस में नहीं आ रहे हैं। वाजपेयी जैसे लोग उदार हैं लेकिन वे उदार संघी हैं। यानि वे संघी पहले हैं उदार बाद में। इसीलिए वे सारे संकट के क्षणों में मोदी जैसे नरभक्षकों की रक्षा में खड़े हो जायेंगे। ये लोग तो कातिलों के खुलेआम सहयोगी हैं।

महत्वपूर्ण चीज है राजग की सहयोगी पार्टियों और विपक्षी पार्टियों की इन सबमें भूमिका। धर्म निरपेक्षता का ढोंग करते हुए ये सभी हिन्दू साम्प्रदायिकता का तुष्टीकरण कर रही हैं। ये उसी खेल को छिपे तौर से खेलने को तैयार हैं जो नरेन्द्र मोदी खुलेआम खेल रहा है।

नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व में संघ परिवार द्वारा मुस्लिम आबादी का यह नरसंहार (जेनोसाइड) संघ परिवार की उस हताशा की अभिव्यक्ति है जो उस पर चार राज्यों के विधान सभा चुनावों में उसकी हार से पैदा हुई। इन चुनावों के परिणाम से संघ परिवार ने निष्कर्ष निकाला कि उसके सामने एक ही विकल्प है- वह खत्म हो जाये या फिर अपनी रक्षा के लिए बेहद आक्रामक हिन्दू साम्प्रदायिकता का तांडव नृत्य किया जाये। संघ परिवार ने दूसरा मार्ग चुना। वह पहला चुन भी नहीं सकता था।

संघ परिवार ने गुजरात को मुस्लिम नरसंहार की अपनी प्रयोगशाला बनाया, जहां अगले साल चुनाव होने वाले हैं। वैसे प्रयोगशाला की तैयारी पिछले ही साल से की जा रही थी।

इस प्रयोग के परिणाम सामने हैं। हजारों मुसलमान मारे जा चुके हैं, लाखों बेघर होकर राहत शिविरों में सिसक रहे हैं। एथनिक क्लिंग्स भारी पैमाने पर चल रहे हैं और इसका संचालन कर रही है गुजरात का संघी मंत्रिमण्डल।

इस एथनिक क्लिंग्स और जेनोसाइड पर महामहिम बुश चुप हैं जैसे वे शेरोन के जेनोसाइड पर चुप हैं। इस पर श्रोडर, चिराक पुतिन और ब्लेयर सभी चुप हैं। वाशिंगटन, बोन, पेरिस, मास्को, लंदन कहीं से आवाज नहीं आ रही है कि सुदर्शन, मोदी, वाजपेयी, आडवाणी को हेग ले जाकर उन पर मिलोसेविक की तरह मुकदमा चलाया जाये। इसके बदले इन्हें और शेरोन को “सलाहें” दी जा रही हैं।

साम्राज्यवादियों और उनके इन छोटे भाइयों ने दुनिया की जनता की निगाहों में अपने आप को इतना नंगा नहीं किया होगा। इनका वीभत्स रूप कभी भी इतना ज्यादा उजागर नहीं हुआ होगा। हिटलर के ये नये अवतार कभी भी इतने साफ-साफ सामने नहीं आये होंगे। इन्हें पहचानना इससे ज्यादा आसान नहीं रहा होगा।

(साभार : 'नागरिक' वर्ष 5 अंक 8, 16-30 अप्रैल 2002)

गुजरात में मोदी ने मरघट की शांति कायम की है

गुजरात के विकास की इस समय समूचे देश में चर्चा है। लगातार तीन बार विधानसभा का चुनाव जीतकर मुख्यमंत्री बने नरेन्द्र मोदी की देश के पूंजीपति जमकर तारीफ कर रहे हैं। सिंगूर से खदेड़ देने के बाद रतन टाटा के नैनो कार बनाने के 'ट्रीम प्रोजेक्ट' को मोदी ने गुजरात में जमीन देकर परवान चढ़ाया है। सिने स्टार अमिताभ बच्चन टेलीविजन पर गुजरात के गुणगान करते नहीं थकते। दारुल उलूम देवबंद के कुलपति वस्तानवी ने भी मोदी के विकास की जमकर तारीफ की है। गुजरात से बाहर के लोगों को लगता है कि 2002 के दंगों के बाद गुजरात एकदम बदल गया है, शांति है व विकास के रास्ते पर आगे बढ़ चला है।

वर्ष 2002 में अल्पसंख्यकों के खिलाफ हिंसा भड़काकर अपनी सत्ता को बरकरार रखने का नरेन्द्र मोदी द्वारा किया गया अभिनव प्रयोग आज तक जारी है। हिन्दुत्व की प्रयोगशाला गुजरात में मोदी आज भी साम्प्रदायिक कार्ड खेलकर मजबूती के साथ सत्ता से चिपका हुआ है। अब गुजरात के बाद यह भारतीय हिटलर दिल्ली की गद्दी पर बैठने के सुनहरे ख्वाब संजो रहा है। विधायिका व कार्यपालिका के साथ वहां पर न्यायपालिका का भी भगवाकरण मुकम्मल हो चुका है।

वर्ष 2002 में दलित व पिछड़ी जातियों के हिन्दुओं को अल्पसंख्यकों के खिलाफ खड़ाकर दंगा करवाने वाले मोदी के राज में जो कुछ भी हो रहा है, घोर अमानवीय है। भारतीय संविधान में दिये गये नागरिक अधिकारों को मोदी अपने बूटों तले बेरहमी से रौंद रहा है। गैर सरकारी संगठन 'जनविकास' के सीईओ ने बताया कि गुजरात में बजरंग दल में दलित व पिछड़ों की भर्ती की गयी तथा उनसे कहा गया कि तुम हिन्दू ही नहीं हो, तुम हिन्दुओं से भी बड़े हो। तुम्हें हिन्दुत्व की रक्षा करनी है और इस तरह मुस्लिमों के खिलाफ इस्तेमाल किया गया।

रमेश चन्द्र परमार कहते हैं कि मोदी वाल्मीकियों की सभा में जाकर बोले कि 'सबसे ज्यादा अन्याय आप लोगों ने ही झेला है। कांग्रेस ने बुनकर व चमार जाति के लोगों को तो लाभ दिया परन्तु आपके लिए कुछ नहीं किया। मोदी ने उनसे कहा कि मल उठाने (सर पर मैला ढोने का काम) का काम तो तप करने जैसा है। आप तो ऋषि मुनियों के वंशज हैं।

गुजरात में अल्पसंख्यकों के साथ हो रहे अत्याचार की खबरें राष्ट्रीय मीडिया से लगभग गायब हो चुकी हैं। गैर सरकारी संगठन 'अनहद' व 'सेंटर फार पीस एंड जस्टिस' ने 21 फरवरी 2011 को मेहन्दी नवाज जंग हाल अहमदाबाद में गुजरात के मुस्लिमों के साथ क्या कुछ बीत रहा है, इसे बताने के लिए एक 'जन सुनवाई' का कार्यक्रम आयोजित किया। इस 'जन सुनवाई' कार्यक्रम में लगभग 500 लोग गुजरात के विभिन्न जिलों से पहुंचे थे। गुजरात हाईकोर्ट के पूर्व न्यायाधीश आर ए मेहता, एनी राजा, गगन सेठी व लेखिका गीता हरीहरन इस जनसुनवाई के दौरान ज्यूरी के सदस्य थे। राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग की सदस्या सईदा विलग्रामी इमाम को विशेष आर्बनर के तहत आमंत्रित किया गया था।

इस 'जन सुनवाई' में समूचे गुजरात का दर्द उभर आया। अपनी व्यथा सुनाते-सुनाते पीड़ित कई बार फफक-फफक कर रो पड़ते थे। दिन में 10 बजे से 5 बजे तक चली सुनवाई में 55 लोगों ने बड़ौदा, गोधरा, मेहसाना, पंचमाल, सांबर काठा, दाहोद, अहमदाबाद इत्यादि स्थानों से आकर अपना दर्द रखा। 'जन सुनवाई' के दौरान 'अनहद' की निर्देशिका शबनम हाशमी ने कहा कि वर्ष 2002 के दंगों के दौरान पत्थर खाकर भी रिपोर्टिंग करने वाले पत्रकार अब गुजरात के मुद्दे पर एक बात भी सुनने को तैयार नहीं हैं। वर्ष 2007 में विलासा के 5 गांव जला दिये गये थे। नेशनल मीडिया को फोन करने पर जबाब मिला कि 'तुम्हें गुजरात के अलावा कोई बात नहीं करनी होती'। हाशमी ने कहा कि अब गुजरात का दुःख सुनना भी इन्हें बर्दाश्त नहीं है।

'जन सुनवाई' में इस देश में अल्पसंख्यक होने, मुस्लिम होने की पीड़ा उभर आयी। इस देश में पैदा हुए, पले-बढ़े मुस्लिम अपने आप को दूसरे दर्जे का नागरिक महसूस कर रहे थे।

मो. हबीब करीम ने बताया कि 3 अप्रैल, 03 को तरुण बेजार व अन्य ऑफिसर उनके घर आए। घर पर उनका लड़का नहीं था तो उन्हें उठाकर ले गये। गैरकानूनी हिरासत में रखकर 9 अप्रैल को बोला कि साइन करके जाओ। 4 सादे कागज सामने रख दिये। उनके द्वारा साइन करने से इंकार करने पर मौजूद अधिकारी ने कहा कि साइन करोगे तभी जा सकते हो। मजबूरी में उन्होंने साइन कर दिये।

गुलाम कागजी बड़ौदा से पहुंचे थे। वर्ष 2007 में उन्होंने पुलिस द्वारा ऑटो रिक्शा वाले के साथ हुए उत्पीड़न के मामले में उठाने का गुनाह किया था तो पुलिस ने उन्हें बांग्लादेशी का फर्जी पासपोर्ट बनाने का आरोप लगाकर जेल में डाल दिया। साथ में उनके परिवार के 3 अन्य लोग भी बंद कर दिये। बाद में आरोप सिद्ध न होने पर 40 दिन के बाद वे जेल से रिहा कर दिये गये।

'जन सुनवाई' में आए अल्पसंख्यकों ने बताया कि उनके बच्चों को अच्छे स्कूलों में दाखिले इसलिए नहीं दिये जाते कि वे मुस्लिम हैं। व्यक्तिगत समस्याएँ लेकर जाने पर सरकारी अधिकारी मुस्लिम होने के कारण उनकी बात तक नहीं सुनते। उन्हें बैंक से लोन तक नहीं दिये जाते। बजरंग दल तथा विहिप के लोग पुलिस के साथ मिलकर मीट का कारोबार करने वालों से अवैध वसूली करते हैं। उनके बकरों से भरी गाड़ियां बीच रास्ते में रोककर 20-25 हजार तक की वसूली करते हैं। मना करने पर बकरों की गाड़ी पुलिस के द्वारा बंद करा देते हैं। हिन्दू त्यौहारों के समय उनकी दुकानें बंद करा देते हैं।

फर्जी एनकाउण्टर, गैर कानूनी हिरासत, डर व जोर जबर्दस्ती से सादे कागजों पर हस्ताक्षर करवा लेना, पुलिस द्वारा मुस्लिमों को फर्जी मुकदमों में फंसाना तथा न्यायालय द्वारा जमानत न मिलना व आसानी से पुलिस रिमांड पर दे देना। बड़ी संख्या में मुस्लिमों पर आतंकवादी होने का आरोप लगाकर उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया है। गिरफ्तार करने के बाद इसकी सूचना उनके परिवार को भी नहीं दी जाती। न्यायालय द्वारा मुस्लिमों को निर्दोष करार देने के बावजूद भी फर्जी मुकदमे लादने वाले पुलिस अधिकारियों को खिलाफ कार्यवाही नहीं की जाती।

अल्पसंख्यकों के धार्मिक स्थलों को तोड़े जाने की घटनाओं को पीड़ितों ने ज्यूरी के समक्ष रखा। कब्रिस्तान पर सड़क बनाने तथा उन पर दूसरे सम्प्रदाय के लोगों द्वारा गंदगी डालने तथा कब्रिस्तान की जगहों को बिल्डरों को सौंप देने के मामले भी अल्पसंख्यकों ने बताया। तिलकबाड़ा(नर्मदा) से आए गुलाम नवी शेख ने बताया कि 100 साल पुराने कब्रिस्तान पर एपीएमसी की बिल्डिंग खड़ी कर दी गयी है। बिल्डिंग निर्माण के समय बजरंग दल व हिन्दूवादी संगठनों के लोग डंडे लेकर खड़े रहते थे।

बड़ौदा निवासी शाकिर शेख का भाई हनीफ शेख 1 मई 2006 को लौटकर घर आ रहा था। उस दिन बड़ौदा में मुस्लिमों की 200 वर्ष पुरानी दरगाह पर सड़क चौड़ी करने के नाम पर बुलडोजर चला दिया गया था। घर वापस लौट रहे हनीफ शेख से पुलिस ने उसका नाम पूछा और उसके सीने पर गोली मार दी। शाकिर शेख का

कहना था कि एक तरफ दरगाह कमेटी की बात चल रही थी तो दूसरी तरफ पुलिस ने बुलडोजर लेकर दरगाह तोड़ डाली। पुलिस ने मात्र मेरे भाई को ही गोली नहीं मारी, उसने नाम पूछकर और भी कई को गोली से उड़ा दिया।

अब्दुल राशिद माचिस वाला के भाई को वर्ष 2002 में गुजरात एपीएमसी की बसों में हुए टिफिन बम कांड में पुलिस ने 22 लोगों के साथ गिरफ्तार किया था जिसमें से 5 लोग तो बगैर चार्जशीट दायर किये ही छोड़ दिये गये थे। 12 लोग 3 वर्ष बाद छोड़े गये। शेष को सत्र न्यायालय ने 10 वर्ष की सजा सुनाई थी। अब जब उनकी सजा पूरी होने वाली थी तो सरकार ने हाईकोर्ट में अपील कर दी। हाईकोर्ट ने उनकी सजा को बढ़ाकर आजीवन कारावास में बदल दिया।

पेशे से वकील अहमद खान पठान कहते हैं कि यह हमारी कमनसीबी कहो या कमजोरी, हम हिन्दुस्तानी मुसलमान अपने हक के लिए दर-दर भटक रहे हैं। भारत के संविधान में हमारे राइट कहां हैं? लिबर्टी कहां है? 2002 के दरिंदे बेखौफ घूम रहे हैं। वे अपना खूनी खंजर लिये घूम रहे हैं।

गुजरात में लगातार दंगे जैसी स्थिति है। अकील भाई ने बताया कि 14 फरवरी 2011 को मोबाइल की दुकान पर मुस्लिम लड़की से छेड़छाड़ की घटना हुयी। घटना की जानकारी घरवालों को मिलने पर कुछ लड़कों ने मिलकर छेड़खानी करने वाले लड़के की पिटाई कर दी। देखते-देखते छेड़खानी का मामला हिन्दू-मुस्लिम सम्प्रदाय के बीच का झगड़ा बना दिया गया। अकील भाई के केबिन समेत 4-5 अन्य अल्पसंख्यकों की दुकानें लूटकर आग लगा दी गयी। अकील भाई का कहना है कि दंगा करने वाले हिन्दुओं के खिलाफ पुलिस ने कोई कार्यवाही नहीं की।

‘जन सुनवाई’ में आए मामले वर्ष 2002 के बाद के थे। इस ‘जन सुनवाई’ में एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं था जो कि पूंजीपति वर्ग का मुस्लिम सदस्य हो। सभी मामले गरीब व मध्यमवर्गीय लोगों की व्यथा कह रहे थे। दारुल उलूम के कुलपति वस्तानवी का यह कहना कि गुजरात में सभी वर्गों-तबकों के लोग तरक्की कर रहे हैं। इस बात की सम्भावना की ओर इशारा करता है कि मोदी ने गुजरात के धनी मुस्लिमों को रियायतें देकर अपने पक्ष में कर लिया है।

‘जन सुनवाई’ जैसे कार्यक्रम जहां एक ऐसे मंच के रूप में सामने आते हैं जहां लोग अपने दुःखों को व्यक्त और साझा कर सकते हैं परन्तु यहां से समाधान का कोई रास्ता नहीं निकलता है। कई गरीब लोग वास्तविक न्याय की आशा में भी इस कार्यक्रम में शामिल हुए थे। उन्हें प्रतीकात्मक न्याय नहीं वास्तविक न्याय चाहिए। परन्तु वास्तविक न्याय ऐसे मंच, ऐसी संस्थाओं(एनजीओ) के बूते की बात नहीं है। सच्चे व वास्तविक न्याय की लड़ाई का रास्ता मजदूर वर्ग के नेतृत्व में छोड़े जाने वाले संघर्ष और पूंजीपति वर्ग जो कि नरेन्द्र मोदी जैसे फ्रासिस्टों को संरक्षण देता है, की करारी हार से होकर जाता है। पूंजीवाद का नाश और समाजवाद की स्थापना से होकर जाता है। बाज दफे ऐसे कार्यक्रम संस्थाएं जनता के आक्रोश को निकालने भर का एक माध्यम बन जाते हैं। पूंजीवाद के लिए ‘सेप्टी बाल्व’ का काम करने के लिए स्वयं पूंजीपति वर्ग, उसकी सरकारें इन संस्थाओं को पालती-पोसती हैं, पैसा व स्थान उपलब्ध कराती हैं।

गुजरात में जो कुछ हो रहा है उसने मोदी की सत्ता को मजबूत किया है। राज्य मशीनरी के साथ मिलकर, मोदी, भाजपा व संघ के हिन्दूवाहिनी संगठनों के गुण्डे अपनी कार्यवाहियां जारी रखे हुए हैं। जनता के बीच हिन्दू-मुस्लिमों का बंटवारा करके गुजरात के सिंहासन पर विराजमान मोदी सत्ता के नशे में चूर होकर समझ रहा है कि वह गुजरात का आजन्म राजा बन चुका है। परन्तु ऐसे तानाशाहों का अंत क्या होता है इसका इतिहास गवाह है। जर्मन में हिटलर ने भी जर्मनी में अल्पसंख्यक यहूदियों के खिलाफ दंगा करवाकर विश्व विजेता बनने का सपना देखा था। अंत में उसे आत्महत्या करनी पड़ी। नरेन्द्र मोदी भी गुजरात में अल्पसंख्यकों का नरसंहार करने के बाद भारत का प्रधानमंत्री बनने का सपना देख रहे हैं। ऐसे तानाशाह का क्या हथ्थ हो सकता है आप स्वयं अनुमान लगा सकते हैं।

(साभार: ‘नागरिक’ वर्ष 14 अंक 06, 16-31 मार्च 2011)

मोदी का राष्ट्रवाद और देशभक्ति

पिछले दिनों देश के प्रधानमंत्री पद की दौड़ में जुटे नरेन्द्र मोदी ने एक साक्षात्कार में खुद को हिन्दू राष्ट्रवादी घोषित करते हुए देशभक्त करार दिया। इसी दौरान मोदी ने गुजरात नरसंहार में मारे गये लोगों की तुलना कुत्ते के पिल्ले से करते हुए उनके मरने पर अपना दुःख प्रकट किया और साथ ही कांग्रेस पर अपनी असफलता छिपाने के लिए धर्मनिरपेक्षता का बुर्का पहनने का आरोप लगाया।

अपनी पहली बात में मोदी ने कहा कि वे हिंदू हैं और राष्ट्रवादी हैं इसलिए हिंदू राष्ट्रवादी हैं। सुनने में सहज सा लगने वाला यह तर्क अपनी गहराई में खासे गहरे व घातक निहितार्थ ग्रहण कर लेता है। राष्ट्रवाद पूंजीवाद के आगमन के साथ राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया में और किसी हद तक साम्राज्यवाद के विरोध के रूप में पैदा हुआ था। भारत में जब देश अंग्रेजों का गुलाम था तब चूंकि यह देश की आम जनता के हित में कार्यरत धारा को अभिव्यक्त करता था इसलिए यह शब्द सकारात्मक अर्थ या देशभक्ति के पर्याय के रूप में प्रयुक्त होता था। देश की आजादी के बाद भी जिस हद तक साम्राज्यवाद विरोधी, सामन्तवाद विरोधी कार्यभार शेष थे उस हद तक उसको लक्षित राष्ट्रवाद प्रगतिशील रूप लिये रहा।

सामन्ती व साम्राज्यवादी ताकतें इस राष्ट्रवाद के घोर विरोधी रहे हैं। यहां यह स्पष्ट रहे कि मजदूर वर्ग राष्ट्रवाद के बजाय अंतर्राष्ट्रीयतावाद की बात करता है। वह दुनिया भर के मजदूरों के हित एक होने की बात करता है। परन्तु जिस हद तक विभिन्न देशों में सामन्ती या साम्राज्यवादी प्रभुत्व मौजूद होता है उस हद तक वह अपने देश में इनके खिलाफ लड़ने के लिए राष्ट्रवादियों के साथ खड़ा होता है।

भारत में पूंजीपतियों की पार्टी कांग्रेस व पहले क्रांतिकारियों की व बाद में कम्युनिस्ट पार्टी की धारा दोनों ही सामन्तवाद-साम्राज्यवाद के खिलाफ संघर्षरत थीं। परन्तु पूंजीपति वर्ग व मजदूर वर्ग दोनों के लक्ष्य अलग-अलग थे। इसी अनुरूप उनके तेवर भी अलग-अलग थे। कांग्रेस सामन्तों-साम्राज्यवादियों से समझौता-संघर्ष चला किसी तरह पूंजीपति वर्ग की सत्ता चाहती थी। वहीं मजदूर वर्ग और उसकी पार्टी सामन्तवाद-साम्राज्यवाद से पूर्ण मुक्ति के बाद पूंजीपतियों से भी निपटारा कर मजदूर राज समाजवाद की स्थापना की ओर बढ़ना चाहती थी। इसी अलग-अलग लक्ष्यों के चलते कांग्रेस जहां लगातार समझौते करते हुए आगे बढ़ती थी वहीं क्रांतिकारी ताकतें जुझारू संघर्ष की राह अपनाते थे। एक असहयोग आन्दोलन का अहिंसक रूप अपनाती थी वहीं दूसरी तेलंगाना-तेभागा सरीखे जुझारू किसान संघर्ष चलाती थी। एक को गांधी के रूप में अपना नेता मिला तो दूसरे ने भगतसिंह को अपने आदर्शों के बतौर चुना।

फिर भी यह स्पष्ट था कि दोनों धारयें समाज को आगे ले जाना चाहती थीं इसलिए दोनों खुद को उस समय देशभक्त होने का दावा कर सकती थीं।

इस सबके बीच अंग्रेजों के शासन में एक डूबते तबाह होते वर्ग के रूप में पुराने राजा, नबाव, सूदखोर भी थे जो मूलतः अंग्रेजों की दया पर निर्भर थे। अंग्रेजों के खिलाफ किसी भी संघर्ष को ये गलत मानते थे। अस्त होते इन वर्गों ने 1888 में यूनाइटेड इंडिया पेट्रियाटिक एसोसिएशन का गठन किया इसमें ढाका के नबाव व काशी के राजा शामिल थे। बाद में अंग्रेजों की 'बांटो व राज करो' की नीति के चलते इस एसोसिएशन के मुस्लिमों ने 1906 में मुस्लिम लीग का गठन किया तथा कुछ समय बाद हिन्दुओं ने 1915 में हिन्दु महासभा का गठन किया। मुस्लिम लीग व हिन्दु महासभा क्रमशः मुस्लिम राष्ट्रवाद व हिन्दु राष्ट्रवाद की पैरोकार थीं। ये अंग्रेजों के खिलाफ आजादी के आंदोलन की विरोधी थीं। चूंकि ये संगठन आजादी की लड़ाई को कमजोर करते थे इसीलिए अंग्रेजों ने इनका खुलकर समर्थन किया। बाद में हिन्दु महासभा भी राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ में तब्दील हो गयी। अपने निर्माण के बाद से मुस्लिमों का विरोध व साम्प्रदायिकता फैलाना इसका मुख्य काम रहा। दंगों के साथ राष्ट्रीय आंदोलन को कमजोर करने में अंग्रेजों ने आर.एस.एस. का इस्तेमाल किया। इन अर्थों में हिन्दू राष्ट्रवाद कहीं से भी देशभक्त नहीं बल्कि साम्राज्यवाद की चाकरी करता था।

जाहिर है हिन्दू राष्ट्रवाद हिन्दुत्व पर आधारित 'हिन्दू राष्ट्र' का निर्माण चाहता था। उसके दुश्मन अंग्रेज नहीं मुस्लिम व अन्य धर्मों के लोग थे इसलिए यह शुरू से ही प्रतिक्रियावादी था। आजादी के बाद सत्ता पाने के बाद पूंजीपति वर्ग प्रतिक्रियावादी हो गया और उसका राष्ट्रवाद भी प्रतिक्रियावादी हो अंधराष्ट्रवाद में तब्दील हो गया। उसकी देशभक्ति खत्म हो गयी। आज यह अंधराष्ट्रवाद स्वतंत्रता का पैरोकार नहीं उसे कुचलने वाला बन गया। इसी के दम पर भारतीय राज्य कश्मीर से पूर्वोत्तर के राष्ट्रों की आजादी की आकांक्षा को कुचलता है। आज पूंजीपतियों का प्रतिक्रियावाद व संघ का प्रतिक्रियावाद एक दूसरे के साथ खड़े हो गये हैं। दोनों अंधराष्ट्रवाद के समर्थक हो गये हैं। उनका 'राष्ट्रवाद' आज साम्राज्यवादियों से समझौते करता है। कमजोर पड़ोसी मुल्कों पर धौंस जमाता है। अपने देश के अल्पसंख्यकों का कल्लेआम करता है। मजदूरों-मेहनतकशों के हक छीनता है।

इसलिए देश को पूंजीपति वर्ग और संघ के 'राष्ट्रवाद' से खतरा है। इसलिए जब मोदी बड़ी चालाकी से खुद को हिन्दू+राष्ट्रवादी = हिन्दू राष्ट्रवादी घोषित करता है तो वह हिन्दू राष्ट्रवाद को देशभक्त के रूप में मान्यता दिलाना चाहता है। साथ ही अपने साम्प्रदायिक हिन्दुत्व के एजेण्डे को भी आगे बढ़ाना चाहता है। इतिहास में हिन्दू राष्ट्रवादी पहले भी देशभक्त नहीं थे और आज भी नहीं हैं इस तथ्य को वह धूमिल करना चाहता है।

अगर मोदी के हिन्दू राष्ट्रवाद के जबाब में मुस्लिम राष्ट्रवाद, सिख राष्ट्रवाद, ईसाई राष्ट्रवाद के पक्षधर दावेदार पैदा होने लग जायें तो यह संघी लॉबी को बर्दाश्त नहीं होंगे। आज मोदी के इस 'राष्ट्रवाद' का मुकाबला राष्ट्रवाद की कोई नरम-गरम उदार किस्म नहीं कर सकती। इसका मुकाबला मजदूर वर्ग की क्रांतिकारी राजनीति उसका अंतर्राष्ट्रीयतावाद ही कर सकता है।

मोदी चालाकी से ऐसे विषयों का इस्तेमाल करने में जुटा है जिससे वह अपनी हिन्दुत्व की राजनीति को स्थापित कर सके। मुस्लिमों को कुत्ते के पिल्ले या धर्मनिरपेक्षता के बुर्के सरीखे शब्दों के साथ इस्तेमाल कर वह अपनी साम्प्रदायिकता को स्वीकार्य बनाना चाहता है।

मोदी के इस प्रपंच को मेहनतकश जनता भले ही अभी बर्दाश्त कर रही हो पर देर-सबेर हिटलर-मुसोलिनी के इस चले को उसकी कब्रगाह तक पहुंचाने का काम भी यही जनता करेगी। तब मोदी के साथ उसका हिन्दू राष्ट्रवाद भी दफन कर दिया जायेगा। देशभक्त जनता इस काम को अंजाम दे असली देशभक्ति प्रदर्शित करेगी।

जैसी प्रजा वैसा राजा

लोकसभा चुनाव के कार्यक्रम की घोषणा के साथ यह सवाल बिल्कुल फिल्मी अंदाज में पेश और चिन्तन का विषय बन चुका है कि 'कौन बनेगा प्रधानमंत्री'। पूरा पूंजीवादी प्रचार तन्त्र जिसे करोड़ों-अरबों रुपया विभिन्न पूंजीवादी पार्टियों और सरकारों से प्राप्त हो रहा है, इस सवाल को इस ढंग से पेश कर रहा है मानो अमुक के प्रधानमंत्री बनने से यह हो जायेगा और अमुक बन गया तो वह हो जायेगा। यहां सवाल यह है कि क्या किसी व्यक्ति विशेष के प्रधानमंत्री बनने से भारत के जीवन में कोई बुनियादी फर्क पड़ने वाला है।

कहावत है, 'जैसा राजा वैसी प्रजा'। इस कहावत को यदि पलट दिया जाय तो इतिहास की हकीकत और आज के मौजूं सवाल का ज्यादा सटीक जबाब मिल जायेगा। हमारे देश को इन चुनावों के बाद वैसा ही राजा मिलेगा जैसी आज की प्रजा है।

हमारे देश की आज की प्रजा का चरित्र क्या है। उसकी भूमिका वर्तमान दौर में क्या है और क्या ऐसे हालात में उसे वैसा ही नायक या नेता नहीं मिलेंगे जैसी उसकी स्थिति है।

सामन्ती काल की यह कहावत 'जैसा राजा वैसी प्रजा' इस हकीकत को बयां करता था कि राजा जो कि उस समय की सामाजिक-राजनैतिक व्यवस्था की सान्द्र और सर्वोच्च अभिव्यक्ति होता था, के देखने भर से यह अनुमान लगाया जा सकता था कि उस काल में प्रजा की स्थिति क्या हो सकती है। कहावत ठीक थी। परन्तु उस काल में भी कहा जा सकता था कि जैसी प्रजा थी वैसा ही उसे शासन मिला था। जब जनता जागृत हो गयी। जब जनता सामन्तशाही या राजशाही से घृणा करने लगी। जब जनता अपने शोषण-उत्पीड़न के जुए को पहचान गयी तो उसने अपने कंधों से राजा-महाराजाओं को उतारकर इतिहास के कूड़ेदान में फेंक दिया। ऐसी क्रांतिकारी जनता के नायक नये किस्म के लोग थे। ऐसी जनता को वैसा ही शासन मिला जैसा कि वह चाहती थी।

अठारहवीं सदी और उन्नीसवीं सदी के एक हिस्से तक यदि हम अमेरिका को देखें तो उसके नायक या शासक जार्ज वाशिंगटन, जैफरसन और लिंकन जैसे लोग थे। और फिर जैसे-जैसे अमेरिकी पूंजीवाद सड़ता गया और पूरी दुनिया के लिए विनाशकारी साबित होता गया वैसे-वैसे उसका सामाजिक ढांचा ऐसा होता गया कि वहां रीगन, क्लिंटन, बुश, ओबामा जैसे ही शासक हो सकते थे और अमेरिकी प्रजा को वास्तव में अब ऐसे ही शासक तब तक मिलेंगे जब तक वह ऐसे राजाओं को बदलने का संकल्प नहीं ले लेती है और उन्हें इतिहास के कूड़ेदान में नहीं फेंक देती है।

इसी बात को एक अन्य देश रूस के उदाहरण में भी देखा जा सकता है। ठीक एक सदी पहले वहां जारशाही थी। 1917 में एक के बाद दूसरी क्रांति ने जारशाही और पूंजीवाद की नींव खोदकर समाजवाद की स्थापना की। 1917 से लेकर 1956 तक वहां समाजवाद रहा। इस दौरान जनता के नायक लेनिन और स्टालिन जैसे महान व्यक्ति थे। 1956 में पूंजीवाद की पुनर्स्थापना के बाद उसे मिले ख्रुश्चेव, ब्रेझनेव जैसे सामाजिक फासीवादी और 1990 में सोवियत संघ के विघटन के बाद खुले पूंजीवादी जनतंत्र के साथ हाजिर है पुतिन जैसा व्यक्ति जो रूस को उसकी खोई साम्राज्यवादी हैसियत वापस दिलाना चाहता है और उसके लिए उसका रुख एकदम आक्रामक है और इस वक्त यूक्रेन के हिस्से पर कब्जा करने की फिराक में है। रूस की जनता इस सब पर या तो मौन है या फिर कईयों को अच्छा ही लग रहा होगा।

इसी रूसी जनता ने 1917 में क्रांति के बाद साम्राज्यवादी जार के द्वारा कब्जाये इलाकों को वापस कर दिया था। यूक्रेन जैसी राष्ट्रीयताओं को आजाद कर दिया था। तब रूस की जनता के नायक लेनिन थे और आज की रूस की जनता पुतिन जैसे के शासन से कम या ज्यादा सन्तुष्ट है। लेनिन स्वयं क्रांतिकारी जनता के हिस्से और मूर्त अभिव्यक्ति थे जबकि पुतिन ऐसे रूसी शासक वर्ग के नायक हैं जो रूस के भीतर और बाहर दोनों जगह के लिए खतरनाक है।

भारत के नेता, नायक या शासक वैसा ही हो सकते हैं जैसी आज की भारत की जनता है। एक ऐसा पूंजीवादी समाज जहां मध्ययुगीन धार्मिक-सामन्ती मूल्यों, औपनिवेशिक अतीत की छाया हो वहां फेंकू, पप्पू जैसे ही शासक बनेंगे। वहां एक से बढ़कर एक झूठ बोले जायेंगे और उसे युग का सत्य मान लिया जायेगा।

लोकसभा चुनाव के बाद कैसी भी और किसी की भी सरकार बने, वह भारत के वर्तमान पूंजीवादी समाज की दशा और दिशा को नहीं बदल सकती है। वह राहत के या लोक कल्याणकारी कदम उठाये अथवा कोई भी ऐसा कदम न उठाये, पूंजीवादी समाज के पतन को रोक नहीं जा सकता है। जनता कुछ दशक और अपने को 'पप्पू' या 'फेंकू' से बहला सकती है। उसे वे कदम उठाने होंगे जो उसे स्वयं शासक के पद पर बिठा सके। उसे 1871 के पेरिस कम्यून के जैसे कदम उठाने होंगे। पेरिस कम्यून ने मजदूर वर्ग सहित पूरी जनता की मुक्ति की राह खोल दी थी। पूरी जनता को हथियारबंद करना और सेना-पुलिस जैसे तंत्र के खात्मे के साथ उन्होंने नौकरशाही का भी खात्मा कर दिया था। धर्म को राज्य से पृथक कर सच्ची धर्म निरपेक्षता को स्थापित किया था। सरकार चलाने वालों से लेकर नीचे तक के कर्मचारियों का वेतन एक सामान्य मजदूर के वेतन के बराबर कर दिया था। वह स्वयं शासक बन गयी थी। वह स्वयं पर ही शासन कर रही थी। इन अर्थों में वह उस जनवाद की, लोकतंत्र की स्थापना कर रही थी जो कि आदर्शों में भी आदर्श था। वह पेरिस की पूंजीवादी समाज की निरीह जनता नहीं थी वह क्रांतिकारी जनता थी। क्रांतिकारी जनता का वह क्रांतिकारी शासन था। और उसके नायक उतने ही उद्दात और महान थे जैसी कि वह जनता थी।

सामान्य निरीह जनता के क्रांतिकारी जनता बनने में जहां मौलिक कारणों की महत्वपूर्ण भूमिका है वहां क्रांतिकारी विचारों के सचेत प्रचार और उन्हें जनसामान्य के विचार बनाने के प्रयासों की भूमिका भी कम बड़ी नहीं है। जनता के आगे बढ़े हुए तत्व वर्ग सचेत मजदूर और इतिहास की गति को समझने वाले न्यायप्रिय इन्सानों के साथ-साथ भगतसिंह जैसे नौजवान इस कार्य को पहले भी सम्बोधित करते रहे हैं। आज भी उनकी जरूरत है।

पूंजीवाद में जनता का महिमामण्डन बहुत किया जाता है। उसको देवत्व प्रदान किया जाता है और फिर पूंजीपति वर्ग अपना पूरा शोषणतंत्र और सारे अपराध उसके नाम पर चलाता और करता है। आज जनता के महिमामण्डन या पूजा की आवश्यकता नहीं है। आवश्यकता है उसे जगाने की। उसे निरीह जनता से क्रांतिकारी जनता में तब्दील करने की। जब वह जागेगी तब वह इतिहास का निर्माण करेगी तब वह अपने उन नायकों को सृजित करेगी जो लेनिन, हो ची मिन्ह, भगतसिंह आदि, आदि के सदृश ही नहीं होंगे बल्कि उनकी परम्परा को आधुनिक व भावी समाजों में और उच्च व व्यापक स्तर तक ले जाने वाले होंगे और तब राजा-प्रजा, शासक-शासित, शोषक-शोषित जैसे शब्द बेमानी हो जायेंगे।

(साभार: 'नागरिक' वर्ष 17 अंक 16, 16-31 मार्च, 2014)

अधिनायकवादी मुख्य कार्यकारी अधिकारी का सामाजिक आधार

जब जवाहरलाल नेहरू द्वारा जेल में 1944 में लिखी किताब 'भारत की खोज' प्रकाशित हुयी तो डी डी कौशाम्बी ने उसकी एक समीक्षा लिखी थी। समीक्षा का शीर्षक था- "भारत का पूंजीपति वर्ग प्रौढ़ हो गया है"।

इसके तहत कौशाम्बी ने यह प्रस्थापना दी कि नेहरू की किताब यह दिखाती है कि अब भारत का पूंजीपति वर्ग इतना परिपक्व हो गया है कि वह अपने लिए एक राष्ट्र की कल्पना करे और उसे हासिल करने का प्रयास करे। नेहरू की किताब उतना भारत का इतिहास नहीं है जितना एक खास नजरिये से, सत्ता के नजदीक पहुंच रहे पूंजीपति वर्ग के नजरिये से, इस इतिहास को देखना है। साथ ही यह भविष्य की उस दिशा को भी इंगित करता है जिधर पूंजीपति वर्ग अपने राष्ट्र को ले जाना चाहता है।

कौशाम्बी की यह टिप्पणी कई मायने में काबिले गौर थी। वे जिस किताब की समीक्षा करते हुए यह बात कर रहे थे वह जवाहरलाल नेहरू ने लिखी थी। जवाहरलाल नेहरू भारत के भावी प्रधानमंत्री थे और महात्मा गांधी ने पहले ही कह रखा था कि जवाहरलाल उनके उत्तराधिकारी होंगे।

उस समय के कांग्रेसी नेताओं में जवाहरलाल नेहरू सबसे अधिक 'कास्मोपालिटन' (स्थानीयता, देशजता की सीमाओं-बन्धनों से मुक्त) थे। वे आधुनिकतावादी थे। मार्क्सवाद के कई विचारों को स्वीकार करते थे, खुद को समाजवादी कहते थे। वे घोषित तौर पर साम्राज्यवाद विरोधी थे। उनकी देश-विदेश में समाजवादी की छवि थी।

ऐसे व्यक्ति को रूढ़िवादी, पोंगापंथी महात्मा गांधी ने अपना उत्तराधिकारी चुना और वह भी बल्लभ भाई पटेल के ऊपर। पटेल गान्धी के सांचे में ढले आदमी थे और कांग्रेस के सांगठनिक ढांचे पर उनकी पकड़ थी। इसी कारण कांग्रेसी उन्हें ही प्रधानमंत्री पद पर देखना चाहते थे। पर गान्धी ने ज्यादातर कांग्रेसियों की राय को किनारे लगाते हुए प्रधानमंत्री पद के लिए जवाहर लाल नेहरू को आगे बढ़ाया। और इस तरह एक 'कास्मोपालिटन' व्यक्ति देशज लोगों को पछाड़ते हुए उस देश में प्रधानमंत्री बन गया जिसकी करीब नब्बे प्रतिशत जनता गांवों में रहती थी, तीन-चौथाई से ज्यादा जनता निरक्षर थी तथा ज्यादातर आबादी भूत-प्रेत और टोने-टोटके में विश्वास करती थी।

देश की जनता और उसके प्रधानमंत्री के बीच जितनी कल्पना की जा सकती थी उतनी खाई थी। अभी भी ज्यादातर जनता के लिए अपने ही देश के दूसरे हिस्से 'परदेश' थे। बल्कि यह 'परदेश' की सीमा 50-100 किमी के बाद शुरू हो जाती थी। बिहार और उत्तर प्रदेश के लोग जब बम्बई या कलकत्ता में मजदूरी करने जाते थे तो उनके गांवों में यही कहा जाता था कि वे परदेश कमाने गये हैं। इनके मुकाबले नेहरू थे जो न केवल विदेश में पढ़े-लिखे थे बल्कि जिनकी आधी आत्मा विदेशी थी। शेष आधी आत्मा वह थी जो भारत की खोज कर रही थी। वैसे कहना होगा कि भारत की खोज करने में विदेशी आत्मा की महत्वपूर्ण भूमिका थी।

स्थिति को इस तथ्य से भी समझा जा सकता है कि जब पहली बार लोकसभा के चुनाव हुए तो सरकार की ओर से बाकायदा अभियान चलाया गया जिसमें जनता को वोट देने के लिए शिक्षित किया गया। तब भी महज 44 प्रतिशत ही वोट पड़े।

आजादी की लड़ाई में कांग्रेस ने जो साख हासिल की थी उसके कारण देश की गरीब-पिछड़ी जनता उसके पीछे गोलबंद थी। इसी का फायदा उठाकर यह पार्टी देश में अगले चार दशक तक राज करती रही, जनता पार्टी शासन के तीन साल के दौर को छोड़कर।

वैसे इस हालत को 'कास्मोपालिटन' नेहरू बनाम पिछड़ी जनता तक सीमित कर देना मामले का सरलीकरण होगा। स्थिति कहीं ज्यादा पेंचीदा थी और इस पेंचीदगी को बल्लभभाई पटेल तथा राजेन्द्र प्रसाद जैसे लोग अभिव्यक्त कर रहे थे। ठीक-ठीक कहा जाय तो कांग्रेस में ऐसे ही लोगों का बहुमत था और निचले स्तर पर ऐसे ही लोग जनता से संवाद और रिश्ता कायम करते थे- समाजशास्त्रियों की भाषा में ग्राहक और संरक्षक का। ऐसे ही लोगों ने महिला मुद्दे पर सुधारात्मक बिल पास नहीं होने दिया।

यानी एक ओर 'कास्मोपालिटन' नेहरू थे, दूसरी ओर थी पिछड़ी जनता और इनके बीच में थे पोंगापंथी कांग्रेसी। इसी मिश्रण से भारत का पूंजीपति वर्ग अपने देश में पूंजीवाद का विकास कर रहा था। वह पुराने सामंती सम्बन्धों को पूंजीवादी सम्बन्धों में बदल रहा था। नेहरू की भारत की खोज इसी रूप में फलीभूत हो रही थी।

यहां यह ध्यान रखना होगा कि तब भारत की खोज करने वाले नेहरू अकेले नहीं थे। ठीक इसी समय एक और व्यक्ति भारत की खोज कर रहा था। यह व्यक्ति था राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का प्रमुख। वह भी अपने राष्ट्र को परिभाषित कर रहा था- 'वी आर अवर नेशनहुड डिफाईंड' लिखकर। यह मध्ययुगीन हिन्दू धर्म के हिसाब से भारत की खोज थी और यह खोज करने वाला था कस्बाई सर्वर्ण निम्न मध्यम वर्ग। यह न केवल 'कास्मोपालिटन' नहीं था बल्कि हद दर्जे का कूपमंडूक था और यहीं से सारे विदेशी तत्व को देखता था और इसका मूल्यांकन करता था। इसके अनुसार इसका भारत महान था, इसके पास सब कुछ था, इसका अतीत स्वर्णिम था। जरूरत थी तो महज उस सब कुछ का पुनरुद्धार करने की। इसे बाहर से कुछ भी आत्मसात नहीं करना था- न ज्ञान-विज्ञान और न ही संस्कृति। ठीक अपनी कूपमंडूकता के कारण ही वह स्वयं को सर्वोपरि समझता था। ध्यान देने की बात है कि राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ का कार्यालय आज भी किसी बड़े शहरों में नहीं बल्कि नागपुर जैसे कस्बाई शहर में है।

ऊपरी तौर पर लगता है कि तब के हालात में संघ की विचारधारा को अपार सफलता मिलनी चाहिए थी। जहालत और धार्मिक अंधविश्वास से ग्रस्त लोगों में संघ की मध्ययुगीन हिन्दू संस्कृति आसानी से स्वीकार हो जानी चाहिए थी। पर वास्तव में ऐसा नहीं था। जैसा कि कहा गया है संघ का भारतीय राष्ट्र कस्बाई सर्वर्ण निम्न मध्यम वर्ग का राष्ट्र था। यह कस्बों के बनियों, बाबुओं, मास्टरों का राष्ट्र था। उसमें भी उत्तर भारत और उसकी हिन्दी प्रबल थी। इस तरह की कस्बाई आबादी अभी बहुत थोड़ी थी। ज्यादातर आबादी देहातों में थी और अपनी सारी धार्मिक जहालत के बावजूद वह संघी विचारधारा से बहुत दूर थी। बंबई-कलकत्ता को 'परदेश' मानने वाला खेत मजदूर या किसान किसी अमूर्त हिन्दू भारतीय राष्ट्र की ओर आकर्षित नहीं हो सकता था। और न ही तब देश के पूंजीपति वर्ग के लिए इस तरह के राष्ट्र में कोई दिलचस्पी थी।

लेकिन जैसा कि कहा जाता है हर कुत्ते के दिन फिरते हैं। वक्त बदला और उसी के साथ संघ की किस्मत भी बदली।

यह इतिहास की बिड़बना है कि 'कास्मोपालिटन' नेहरू के नेतृत्व में जिस भारत के पूंजीवादी विकास की आम दिशा निर्धारित हुयी और जिस पर देश अगले चार दशकों तक चलता रहा उसका परिणाम वह नहीं निकला जो नेहरू चाहते थे बल्कि वह निकला जिसकी गुरु गोलवलकर कल्पना कर रहे थे। नेहरू की भारत की खोज व्यवहार में गोलवलकर में रूपान्तरित हो गयी। नेहरू-महालनोबीस मॉडल, मनमोहन सिंह-मॉटेक सिंह से होते हुए मोदी तक पहुंच गया। सात दशक बाद देश ने देखा कि नेहरू की कुर्सी पर मोदी विराजमान है। 'कास्मोपालिटन' नेहरू का वारिस गुजरात की रियासत का मालिक निकला। खुद मोदी के ही शब्दों में हार्वर्ड से नहीं 'हार्ड वर्क' (कठिन परिश्रम) से आये हैं।

एक रूप में देखा जाये तो यह कास्मोपालिटन शहरों पर देश के कस्बों और देहातों (जिनका स्वयं अच्छा खासा कस्बाईकरण हो गया है) की विजय है। और इतिहास

का व्यंग्य यह है कि इस विजय को संभव बनाने में कास्मोपालिटन शहरों का स्वर्ण युवा सबसे आगे था। लेकिन तब यह भी बात है कि अजीबोगरीब वैश्वीकरण के इस दौर में स्वयं 'कास्मोपालिटन' शहरों का भी बड़े पैमाने पर कस्बाईकरण हुआ है। जिन वजहों से देहातों का कस्बाईकरण हुआ है ठीक उन्हीं वजहों से बड़े शहरों का भी क्योंकि इन शहरों में भारी आबादी लगातार देहातों और कस्बों से आ रही है।

एक कोण से देखें तो भारतीय समाज का समांगीकरण बढ़ा है। सामंती, पूंजीवादी और आदिवासी के बदले अब सब मोटा मोटी पूंजीवादी सामाजिक-आर्थिक संरचना के तहत आ चुका है। जाति के आधार पर भी अब स्वर्ण और दलित के बीच वह दूरी नहीं है जो पचास-साठ साल पहले थी। इसके विपरीत वर्गीय आधार पर खाई चौड़ी हुयी है और पूंजीवादी आधार पर असामनता में वृद्धि हुयी है।

लेकिन देश का जो विकृत पूंजीवादी विकास हुआ है, उसने विकास होने और न होने दोनों की समस्या पैदा की है। आबादी में तीखे विभेदीकरण के बावजूद इसने देश में कूपमंडूकता का एक समुद्र पैदा किया है। सामंती काल की जहालत के बदले इसने पूंजीवादी समाज की कूपमंडूकता पैदा की है।

यह कूपमंडूकता समस्याओं का सरलीकृत समाधान चाहती है। यह सरल कारण और सरल परिणाम ढूंढती है। यह महानायकों और मसीहाओं के इंतजार में रहती है। इसे खुद को किसी आधिनायक के हवाले कर देने में कोई दिक्कत नहीं होती। यह रोग का तुरत-फुरत निदान चाहती है।

इस कूपमंडूकता के लहराने के साथ संघ के दिन फिरने लगे। उसका तेजी से प्रसार होने लगा। कुछ पगलाये लोगों का गिरोह अब समाज में अधिकाधिक वैधता हासिल करने लगा। धीमे-धीमे वह भारत की पूंजीवादी राजनीति में कांग्रेस पार्टी का विकल्प बन गया। और तब भारत के पूंजीपति वर्ग ने उस पर दांव लगाने में देर नहीं की। जनता पार्टी शासन, वाजपेयी शासन से होते हुए अब यह सिलसिला मोदी तक आ पहुंचा है।

निश्चित तौर पर नरेन्द्र मोदी एक परिघटना हैं। लेकिन वे ठीक उसी तरह एक परिघटना हैं जैसे कि नेहरू थे। यानी उनकी व्यक्तिगत खूबियां इस मायने में उतनी महत्वपूर्ण नहीं हैं जितनी कि वे सामाजिक गतियां जो ऐसे व्यक्तियों को टेलकर इतिहास के रंगमंच पर पहुंचाती हैं।

नेहरू और मोदी में कई साम्य हैं। दोनों ही कठिन परिश्रम करने वाले थे। नेहरू का कहना था कि चार घंटे सोना पर्याप्त है, पांच घंटे ऐश है और छः घंटे सोना तो वास्तव में दुर्गुण है। मोदी भी केवल चार घंटे सोने का दावा करते हैं। नेहरू का एक मिशन था और मोदी का भी है। दोनों ही स्टाइल वाले व्यक्ति हैं। दोनों का कुर्ता-पाजामा और जैकेट वाले। बस मोदी के बटन छेद में गुलाब नहीं होता।

पर यहीं समानता समाप्त हो जाती है। नेहरू भारत की पूंजीवादी राजनीति में दो दशक तक केन्द्र में रहने के बाद प्रधानमंत्री बने थे। मोदी प्रधानमंत्री बनते समय ही केन्द्र में पहुंचे। नेहरू सारी दुनिया में बहुत वांछित व्यक्ति थे जबकि मोदी अभी तक एकदम अवांछित। नेहरू अपने खुले प्रेम प्रसंगों के लिए जाने जाते थे और मोदी गुप-चुप पीछा करने के लिए।

सात दशक पहले नेहरू भारत के पूंजीपति वर्ग की पहली पसंद थे और आज सात दशक बाद मोदी। भारत का पूंजीपति वर्ग इस तरह पीछे क्यों गया है? देश का पूंजीवादी विकास हो जाने और स्वयं पूंजीपतियों के फल-फूलकर विदेशों तक में पांव पसारने के बाद पूंजीपति को मोदी की जरूरत क्यों पड़ी है?

इसकी पहली वजह तो यही है कि मोदी नीत भाजपा ने स्वयं को कांग्रेस पार्टी के मुकाबले एक वास्तविक विकल्प, और वह भी- पूंजीपति वर्ग के मन मुताबिक बेहतर के रूप में स्वयं को पेश किया है। भाजपा पहली बार वास्तव में एक भारतीय पार्टी के रूप में सामने आयी है।

दूसरी यह कि निश्चित सामाजिक-आर्थिक संरचना ने इस विकल्प का पैदा होना संभव बनाया है। इसका ऊपर वर्णन किया गया है। पूंजीपति वर्ग अपने शासन के लिए इतना लचीला होता है कि वह विकल्पों की एक व्यापक श्रृंखला के साथ खुद को समंजित करता है। एक व्यक्ति की तानाशाही एक पार्टी की तानाशाही, सैनिक तानाशाही, बहु पार्टी पूंजीवादी जनतांत्रिक प्रक्रिया में यदि भाजपा जैसी पार्टी सत्ता में आती है, जो अपनी आम विचारधारा में हमेशा से ही धुर दक्षिणापंथी रही है, तो पूंजीपति वर्ग उसे आगे बढ़कर हाथों-हाथ लेगा।

इस के साथ यह भी है कि भारत की वर्तमान स्थितियों में एक गंभीर संकट हमेशा ही पृष्ठभूमि में है जो कभी भी खुले रंगमंच पर आ सकता है। ऐसे में उसके समाधान के लिए या उससे निपटने के लिए इस तरह के अधिनायकवादी व्यक्ति के नेतृत्व में एक अधिनायकवादी प्रवृत्ति की पार्टी का सत्ता में आना उसके लिए मुफीद ही है।

इस तरह पहले से कहीं ज्यादा 'कास्मोपालिटन' और वैश्वीकृत हो गये भारत के पूंजीपति वर्ग का एक कस्बाई अधिनायकवादी की शरण में जाना समझ में आने वाली बात है। यह बहुत कुशलतापूर्वक प्रतिगामी कूपमंडूकीय शक्तियों को अपने हित में इस्तेमाल करने की चाल है। दुनिया भर में बड़ा एकाधिकारी पूंजीपति वर्ग पहले ही यह चालें चल चुका है। यह याद रखना होगा कि नाजी पार्टी और हिटलर दोनों ही नुरेमबर्ग की पैदाइश थी, बर्लिन की नहीं।

नरेन्द्र मोदी आज नेहरू जैसे पूंजीवादी राजनेता की तरह नहीं बल्कि एक कंपनी के मुख्य कार्यकारी अधिकारी (सीईओ) की तरह दिल्ली की गद्दी पर आसीन हो चुके हैं। वैसे भी निजीकरण-उदारीकरण-वैश्वीकरण के पिछले दो दशक में पूंजीपति वर्ग अपने लिए एक ऐसे ही सीईओ की मांग करता रहा है। बहुत कम लोगों ने इस बात पर ध्यान दिया कि मनमोहन सिंह एक ऐसे ही सीईओ थे हालांकि कमजोर। अब पूंजीपति वर्ग के मनमाफिक एक सीईओ उन्हें मिल गया है जो देश को किसी कंपनी की तरह चलायेगा। पूंजीपति वर्ग वैसे भी अपनी कंपनियों के लिए मुख्य कार्यकारी अधिकारी मध्यम वर्ग से हासिल करता रहा है। अब अगर देश का सबसे बड़ा सीईओ चाय बेचने वाले की पृष्ठभूमि से हो तो यह और भी अच्छा है। यह पूंजीवाद की सम्मोहन की ताकत का जीता-जागता उदाहरण है जिसे पूंजीपति वर्ग नमूने के तौर पर लगातार प्रचारित कर सकता है।

देश का उच्च मध्यम वर्ग भी देश की समस्याओं के समाधान के लिए ऐसे ही सीईओ की मांग करता रहा है। इसके मुकाबले निम्न मध्यम वर्ग किसी अधिनायक की जो 'नायक' फिल्म के नायक की तरह सभी समस्याओं को चुटकियों में हल कर दे। कूपमंडूकता के इस स्तर पर आते-आते सीईओ एक अधिनायक में बदल जाता है और कई मायने में यह पूंजीपति वर्ग के लिए ज्यादा फायदेमंद है।

संधी कूपमंडूकता के विस्तार पर सवार यह अधिनायक जो एक ही साथ कूपमंडूकों के लिए अधिनायक और पूंजीपति वर्ग के लिए मुख्य कार्यकारी अधिकारी दोनों है। दिल्ली की गद्दी पर सवार हो चुका है। वक्त के साथ वह दोनों भूमिकाएं निभाने की कोशिश करेगा। संघ का समूचा ढांचा उसमें इसकी मदद करेगा।

मजदूर वर्ग और देश की अन्य मेहनतकश आबादी के लिए यह स्थिति वाकई बहुत चुनौतीपूर्ण है। इस स्थिति को तोड़कर आगे निकलने के लिए भीम प्रयासों की आवश्यकता होगी।

(साभार: 'नागरिक' वर्ष 17 अंक 12, 16-30 जून 2014)

रंगा-बिल्ला, अंबानी-अदानी और मोदी-शाह

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की एक कविता है जिसका भाव यह कि रंगा-बिल्ला भाई-भाई थे, उन्हें फांसी दी गयी, टाटा-बिडला भी भाई-भाई हैं, पर उन्हें फांसी नहीं हुई। रंगा-बिल्ला दो अपराधी थे जिन्हें 1980 के दशक में चोपड़ा बच्चों के अपहरण, बलात्कार और हत्या के लिए फांसी दी गयी थी।

1980 के दशक में देश के सबसे बड़े पूंजीपति टाटा-बिडला थे। तब पूंजीपति वर्ग के पर्यायवाची के तौर पर टाटा-बिडला कहा जाता था। अब देश के सबसे बड़े पूंजीपति अंबानी बंधु हैं- धीरू भाई अंबानी के बेटे मुकेश अंबानी और अनिल अंबानी। अदानी गुजरात के उभरते हुए पूंजीपति हैं जिन्हें अपने जमीन-मकान के कारोबार और नरेंद्र मोदी के साथ नजदीकी संबंधों के लिए जाना जाता है।

अरविंद केजरीवाल एण्ड कंपनी ने अपनी राजनीति चमकाने के लिए इन्हीं अंबानी-अदानी के साथ नरेंद्र मोदी के संबंधों को उछाला था और उसे सांठ-गांठ वाला पूंजीवाद कहा था। उनके अनुसार वे सांठ-गांठ वाले पूंजीवाद के विरुद्ध हैं और ईमानदारी और प्रतियोगिता वाला पूंजीवाद चाहते हैं। मोदी ने मानो अरविंद केजरीवाल एण्ड कंपनी के आरोपों पर मुहर लगाने के लिए अंबानी और अदानी को अपने शपथ ग्रहण समारोह में आमंत्रित कर लिया।

नरेंद्र मोदी और अमित शाह की जोड़ी तो अब इतनी मशहूर हो गयी है कि वह किसी परिचय की मोहताज नहीं है। इस जोड़ी को उनके समर्थक राम-लक्ष्मण की जोड़ी भी कह सकते हैं तो विरोधी रंगा-बिल्ला।

पिछले तीन दशकों से रंगा-बिल्ला, अंबानी-अदानी और मोदी-शाह जैसी जोड़ियों में क्या कोई संबंध रहा है? क्या ये अलग-अलग परिघटनाएं हैं या एक-दूसरे के साथ सम्बद्ध?

सबसे पहले अंबानी घराने को लें। 1970-80 के दशक में तेजी से उभरकर अंबानी घराना नई शताब्दी में देश का सबसे बड़ा पूंजीवादी घराना बन गया। महत्वपूर्ण बात यह है कि धीरू भाई अंबानी ने अपनी शुरूआत एक मामूली पृष्ठभूमि से की थी। टाटा-बिडला घरानों की प्रारंभिक पृष्ठभूमि अब अतीत की स्मृति हो चुकी है पर धीरू भाई अंबानी के बारे में सामान्य जानकारी रखने वाले लोग भी जानते हैं कि देश का सबसे बड़ा पूंजीपति बनने में उन्होंने बहुत गोरखबंधे किये। उन्होंने नियम-कानूनों को तोड़ा, नेताओं-अफसरों को खरीदा और कोई कसर नहीं छोड़ी। हाल में उनका मुकाबला सहारा के सुब्रत राय ही कर सकते हैं जो इस समय सर्वोच्च न्यायालय के आदेश से जेल में बंद हैं। धीरू भाई अंबानी के गोरखबंधे के बारे में यह धारणा इतनी आम है कि उन पर बनी एक मसाला फिल्म 'गुरू' में भी इसे नहीं छुपाया गया। 2-जी स्पेक्ट्रम घोटाले में अनिल अंबानी की कंपनियों के मुख्य अधिकारी ए. राजा के साथ जेल में महीनों तक बंद रहे।

यदि अदानी के मामले को खंगाला जाय तो वहां भी एक धीरू भाई ही निकलेगा। पिछले दो दशकों में गुजरात सरकार की मेहरबानी से अदानी समूह देश-विदेश में कारोबार करने वाला एक बड़ा समूह बन गया है।

अंबानी-अदानी के सरकार के साथ संबंधों की एक बानगी यह है। पिछले समयों में गोदावरी घाटी में पैदा होने वाली गैस की कीमतों को लेकर काफी हल्ला मचा है। और यह कहा गया है कि गैस की कीमतें मुकेश अंबानी को फायदा पहुंचाने के लिए बढ़ाई गयी हैं। इसमें सच्चाई चाहे जो हो लेकिन यह एक अकाट्य तथ्य है कि नरेंद्र मोदी की गुजरात सरकार में एक लंबे समय से पेट्रोलियम और गैस मंत्री वह शख्स रहा जो अंबानी घराने का रिश्तेदार है। यह तो सांठ-गांठ वाले पूंजीवाद से आगे बढ़कर रिश्तेदारी वाले पूंजीवाद तक पहुंचना हुआ हालांकि अंग्रेजी के शब्द क्रोनी में यह भाव निहित है।

कहा जा सकता है कि पूंजीवाद में यह सब होता ही रहा है और होता ही रहता है तो इसमें नया क्या है? क्या यह सच नहीं है कि 'शुद्ध', 'सच्चे' पूंजीवाद की बात, 'स्वतंत्र और निष्पक्ष' प्रतियोगिता वाले पूंजीवाद की बात केवल पूंजीपति वर्ग के प्रचार में और मध्यम वर्ग की कल्पना मात्र नहीं रही है? बात सच है। पर आज के भारत के पूंजीवाद में कुछ ऐसा है जो इसे थोड़ी विशिष्टता प्रदान करता है। वह है रंगा-बिल्ला, अंबानी-अदानी और मोदी-शाह का समुच्चय। इस समुच्चय के मोदी-शाह वाले हिस्से को लें।

पूंजीवादी प्रचार को छोड़ दें तो मोदी-शाह सबसे ज्यादा मुसलमानों के कत्लेआम और फर्जी मुठभेड़ों में हत्याओं के लिए जाने जाते हैं। 2002 में गुजरात में मुसलमानों का नरसंहार तथा 2013 में मुजफ्फरनगर में हिंदू-मुस्लिम दंगे कोई सामान्य दंगे नहीं थे। वे एक सुनियोजित कत्लेआम थे। इसी तरह गुजरात में कई फर्जी मुठभेड़ भी सामान्य पुलिसिया हरकत नहीं थी। उसे मोदी-शाह की ओर से सुनियोजित तरीके से अंजाम दिया गया था। शाह को तो सर्वोच्च न्यायालय ने ही इस मामले में गुजरात से प्रदेश बदर कर रखा है। यह बेहद सामान्य सी बात है कि शाह ने इतने शानदार कारनामे मोदी की सहमति और अनुमति के बिना नहीं किये होंगे। यह याद रखना होगा कि इन सभी मुठभेड़ों में यह कहा गया था कि आतंकवादी मोदी की हत्या की फिराक में थे। मोदी-शाह के मामले ने तब और भयानक रूप ले लिया जब स्वयं मोदी पर एक भूतपूर्व असंतुष्ट मंत्री की हत्या के सिलसिले में उसके परिजनों ने शक की उंगली उठाई। भारत की पूंजीवादी राजनीति में यह अभूतपूर्व था।

सामान्य अवस्था में किसी भी सभ्य समाज में मोदी-शाह जैसे लोग घृणित अपराधी माने जाते लेकिन आज की विशिष्ट अवस्था में ये लोग देश की गद्दी पर सवार हैं। इनके खिलाफ मामले देश की अदालतों में विभिन्न स्तर पर पिछले दस-पंद्रह सालों से घिसट रहे हैं। जब तक उन पर कोई फैसला आयेगा तब तक ये सत्ता सुख भोगकर चिताओं पर जा चुके होंगे।

आज के भारतीय पूंजीवाद की विशिष्टता यह है कि इसमें सत्ताशीर्ष पर सीधे वे लोग विद्यमान हैं जो सीधे-सीधे अपराधी हैं और जिन पर देश की विभिन्न अदालतों में हत्याओं की साजिश रचने के मुकदमे चल रहे हैं। हो सकता है कि उन पर अदालतों में कभी अपराध साबित न हों। पर इससे सच्चाई नहीं बदल जाती। हत्याएं वास्तव में हुई थीं और उनसे संबंधित सबूत कानूनी तौर पर अदालतों में भले ही खरे न उतरे पर राजनीतिक तौर पर वे पर्याप्त हैं।

और यहीं से बात मोदी-शाह जैसे बड़े राज्य सत्ता के शीर्ष पर बैठे अपराधियों से गली मोहल्लों के रंगा-बिल्ला जैसे अपराधियों पर आ जाती है। पिछले सालों में राजनीति के अपराधीकरण तथा अपराध के राजनीतिकरण पर काफी बातें होती रही हैं पर बहुत कम लोगों ने इस बात पर ध्यान दिया कि भाजपा के पास हिंदू जागरण मंच और बजरंग दल जैसे शुद्ध गुण्डा गिरोह मौजूद हैं। दंगे और दंगों में कत्लेआम करवाने के लिए उन्हें लम्पट तत्वों को गोलबंद करने की जरूरत नहीं है। उनके पास लम्पटों का संगठित गिरोह तो पहले से मौजूद है।

जब यह बात उठती है कि संसद और विधानसभाओं में इतने हत्या और बलात्कार के आरोपी मौजूद हैं कि वह बस इसी बात की अभिव्यक्ति है कि आज के भारतीय पूंजीवाद में भांति-भांति का अपराध सर्वव्यापी हो चुका है। समाज में निचले पायदान पर अपराधी, व्यवसायी और राजनीतिज्ञ को अलग नहीं किया जा सकता। यही बात अब

परिष्कृत रूप में देश के सर्वोच्च स्तर पर विद्यमान है। देश में, उभरते पूंजीवाद में, सबसे तेजी से फलता-फूलता व्यवसाय जमीनों और मकानों का है। इस व्यवसाय में अपराध, व्यवसाय और राजनीति तीनों मूलतः एक ही हैं। और यह बात काबिले गौर है कि सुब्रत राय से लेकर देश के सारे पूंजीपति इस व्यवसाय में कूदे हुए हैं।

उपरोक्त से आज के भारतीय पूंजीवाद की जो तस्वीर उभरती है वह बेलगाम लूटपाट करने वाले लम्पट पूंजीपति वर्ग की है। यह ऐसे पूंजीवाद की तस्वीर है जिसमें पूंजीपतिवर्ग अपने ही कानूनों की हर क्षेत्र में धज्जियां उड़ा रहा है। पूंजीपति वर्ग और इसके सरकारी कारिन्दों ने स्वयं अपने ही कानूनों और अदालतों का माखौल बना दिया है। जब देश के सबसे बड़े पूंजीवादी घराने अपराधी हों और देश की सत्ताशीर्ष पर स्वयं अपराधी बैठे हों तथा इनका गठजोड़ हो तो पूंजीवादी व्यवस्था अत्यन्त जुगुप्सित हो जाती है और जब इनकी निचली पायदान संगठित गुण्डा गिरोहों से बनी हो तो हद दर्जे की खतरनाक भी।

भारत का यह पूंजीवाद वह उभरता हुआ पूंजीवाद नहीं है जिसकी खुशनुमा तस्वीर विश्व बैंक और अंतर्राष्ट्रीय मुद्राकोष जैसे साम्राज्यवादी संस्थान पेश करते हैं। भारत जैसा बेलगाम लूटपाट वाला लम्पट पूंजीवाद आज तीसरी दुनिया के सारे देशों में हावी है। इससे बड़े पैमाने का फायदा साम्राज्यवादी भी उठा रहे हैं। बल्कि इन देशों में लूट को बेलगाम करने में साम्राज्यवादियों की बहुत बड़ी भूमिका रही है। 1980-90 के दशक में इन्होंने तीसरी दुनिया के देशों में उदारीकरण-वैश्वीकरण-निजीकरण की नीतियां लागू करवाईं। पूंजीपति वर्ग पर लागू नियमों-कानूनों को इन्होंने ही ढीला करवाया। प्राकृतिक संसाधनों की लूट का पूरा नक्शा इन्होंने ही तैयार किया। इन्होंने ही इसके लिए अफगानिस्तान और इराक जैसे देशों पर हमला कर उसे तबाह किया।

भारत के उच्च मध्यम वर्ग में यह आकांक्षा और उम्मीद मौजूद है कि भारत का यह लम्पट पूंजीवाद सभ्य हो जायेगा। यह खुद को सुधारकर यूरोप-अमेरिका के पूंजीवाद जैसा बना लेगा। इसे वे प्रतीकात्मक तौर पर स्वयं मोदी के सभ्य हो जाने के रूप में देखते हैं क्योंकि गुजरात नरसंहार वाले मोदी ने कुछ साल बाद खुद को गुजरात माडल वाले मोदी में बदल दिया। उन्हें उम्मीद है कि मोदी का बचा-खुचा रूपांतरण दिल्ली में पूरा हो जायेगा और बाद में देश उन्हें महान मोदी के रूप में याद करेगा।

मजे की बात है कि ऐसा सोचने वाला उच्च मध्यम वर्ग स्वयं अपनी समृद्धि और तदजन्य उम्मीद के मूल स्रोत को नहीं देखता। इस वर्ग की सारी भौतिक समृद्धि इस बेलगाम लूटपाट वाले लंपट पूंजीवाद के कारण ही है। यह पूंजीवाद न होता तो यह वर्ग भी न होता। और न तब देश में अति विकसित पूंजीवाद की उम्मीद ही होती।

इस अमूर्त संभावना से इंकार नहीं किया जा सकता कि सदियों बाद भारत का पूंजीवाद सुधरकर सभ्य और विकसित हो जाये। पर बात सदियों बाद की नहीं आज के भारतीय पूंजीवाद की है। आज के इसके चरित्र और इसमें निहित अंतर्विरोधों की है।

आज के भारतीय पूंजीवाद की गति इसे बेलगाम लूटपाट की ओर बढ़ाती है। साम्राज्यवादी पूंजी और वैश्विक पूंजीवाद की स्थितियां इसे इस ओर और ज्यादा ढकेलती हैं। भला कौन सोच सकता था कि 2007 में जारी वैश्विक आर्थिक संकट के सारे अनुभव जिसमें 2008 में वैश्विक वित्त व्यवस्था ध्वस्त होते-होते बची, के बाद भारत का पूंजीपति वर्ग देश के सार्वजनिक बैंकों के निजीकरण की बात करेगा और उस ओर बढ़ेगा। पर यदि मजदूर-मेहनतकश जनता को चूसकर बैंकों के घाटे को पूरा किया जा सकता है तो इनके निजीकरण में कोई परेशानी नहीं है। यूरोप-अमेरिका के अति विकसित पूंजीवाद ने भारत के पिछड़े लम्पट पूंजीवाद को रास्ता दिखा दिया है। दुनिया भर का सभ्य और अति विकसित पूंजीवाद आज पिछड़े और लम्पट पूंजीवाद से इस कदर गुंथा हुआ है कि दोनों को अलग नहीं किया जा सकता। भारत जैसे देश में इसका एक अत्यन्त ठोस उदाहरण विदेशी अति आधुनिक बैंक पेश करते हैं जब वे कर्जे की वसूली के लिए किसी मध्यम वर्गीय व्यक्ति के पास गुंडे भेज देते हैं।

भारत में आज आप्टन सिक्लेयर के उपन्यास 'जंगल' का दुःख उपस्थित है। फर्क केवल इतना है कि तब के अमेरिका में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ जैसा कोई हिंदू या ईसाई फासीवादी संगठन मौजूद नहीं था। इसकी उपस्थिति मामले को और ज्यादा गंभीर बना देती है। क्योंकि तब सादृश्य 1910 के दशक के संयुक्त राज्य अमेरिका के पूंजीवाद से नहीं बल्कि 1920 के दशक के इटली से या 1930 के दशक के जर्मनी से बनने लगता है जिनके इतिहास से सारी दुनिया वाकिफ है। मसला तब किसी थियोडोर रूजवेल्ट का नहीं बल्कि मुसोलिनी और हिटलर का हो जाता है।

जैसा कि हमेशा होता है, मोदी-शाह के सत्तारूढ़ होते ही बहुत सारे उदारवादी बुद्धिजीवी मोदी और हिंदुत्व में अच्छाइयां देखने लगे हैं। अब उन्हें अमित शाह डरावने नहीं लगते। कई तो आत्मशुद्धि भी कर रहे हैं और अतीत के अपने विचारों के लिए शर्मिंदगी जाहिर कर रहे हैं।

ऐसे लोगों का व्यवहार केवल यही दिखाता है कि इस समय देश के मजदूर-मेहनतकश जनता के सामने कितनी गंभीर चुनौती मौजूद है- रंगा-बिल्ला, अंबानी-अदानी, मोदी-शाह परिघटना के रूप में।

(साभार: 'नागरिक' वर्ष 17 अंक 14, 16-31 जुलाई, 2014)

ओबामा, मोदी और गणतंत्र दिवस

अमेरिकी राष्ट्रपति बराक ओबामा 26 जनवरी को गणतंत्र दिवस के मौके पर भारत आ रहे हैं। पूंजीवादी मीडिया, भारत सरकार सभी बहुत खुश हैं। उनकी खुशी कुछ उसी तरह की है जैसी किसी सड़क छाप गुंडे को शहर के डॉन के अपने घर आने पर होती है। खुशी दो गुनी तब हो गयी जब डॉन ने पड़ोसी पाकिस्तान के आमंत्रण को टुकरा दिया।

ओबामा अमेरिकी साम्राज्यवाद के प्रतिनिधि हैं। वह शांति नोबेल के विजेता हैं। इससे किसी को भी सहज उम्मीद होनी चाहिए कि उन्होंने शांति के लिए कुछ विशेष किया होगा। पर अफसोस ओबामा ने अपने जीवन में शांति लाने नहीं शांति छीनने का एक भी मौका नहीं गंवाया। बंदूकों के दम पर तो उन्होंने दुनिया के गरीबों को कुचला ही साथ ही पूंजी के दम पर भी गरीबों का निवाला छीनने में कोई कोर-कसर नहीं छोड़ी। इराक, अफगानिस्तान, लीबिया, सीरिया, अफ्रीका, पाकिस्तान तक को इनके टैंकरों, जहाजों, द्रोणों ने कल्लगाह में तब्दील कर डाला। ओबामा की शांति का मतलब शायद मौत के बाद छाने वाले सन्नाटे से है तो इस लिहाज से ओबामा शांति का सबसे बड़े 'पुजारी' है।

ओबामा की काबिलियत हथियारों के दम पर मौतें देने में ही नहीं, बल्कि अपने देश के थैलीशाहों की पूंजी के दम पर भी दुनिया के मेहनतकशों को ठंडी मौतों की ओर धकेलने में है। रीगन, थैचर के जमाने से शुरू हुई नवउदारवादी नीतियों को अमेरिका के साथ-साथ पूरी दुनिया के शासकों से लागू करवाने के लिए ओबामा ने दिन-रात एक कर दिया। इसके लिए अपने देश के मजदूरों को मिल रही सुविधाओं को मजदूरों से छीन पूंजीपतियों पर लुटाना शुरू करने में वे नंबर एक हैं। दुनिया के शासकों को भी वे मजदूरों-मेहनतकशों को मिल रही सुविधाएं छीनने को मजबूर करते हैं। जितने लोग गोलियों-बमों से मारे, उससे ज्यादा इसने अपनी पूंजी की ताकत से मार डाले।

ओबामा ने 'लोकतंत्र और आतंकवाद' को ऐसा जुमला बना दिया कि सब आश्चर्यचकित हो गये। अमेरिका जब चुनी गयी लोकतांत्रिक सरकार गिराता है तब वह आतंकवाद से लड़ रहा होता है जब वह आतंकवाद के संगठन रोप रहा होता है तो वह लोकतंत्र की पौध रोपने की तैयारी करता है। कुल मिलाकर संक्षेप में जो अमेरिका के हिसाब से चले वह लोकतांत्रिक और जो न चले वह आतंकवादी।

ओबामा का पेट दुनियाभर के मेहनतकशों के खून से नहीं भरता बल्कि वे अपने देश के मजदूरों का खून चूसने में नंबर एक हैं। उसके चंद वर्षों के शासन में मजदूरों ने वेतन कटौती, छंटनी, बेकारी, सरकारी सुविधाएं छीनने का जो तांडव देखा वे अभूतपूर्व हैं।

उपरोक्त गुण सम्पन्न ओबामा अगर अगले वर्ष भारत आयेंगे तो भारत के प्रधानमंत्री मोदी की खुशी छिपाये नहीं छिपेगी। आखिर महत्वाकांक्षी मोदी भी अपने कर्मों से ओबामा से थोड़ा ही तो पीछे हैं। ओबामा से आगे निकलने की उनकी इच्छा भी लगातार जोर मार रही है। हालांकि अभी दूर-दूर तक इसकी संभावना नहीं है फिर भी दोनों की खून की प्यास बड़ी तगड़ी है।

मोदी ने दो ही मुलाकातों में आखिर क्या ऐसा कर डाला कि ओबामा उन पर इतने मेहरबान हो उठे? इसका जवाब मोदी के 6 माह के कार्यकाल में पूंजीपतियों के पक्ष में लिए गये निर्णयों में है। साम्राज्यवादी पूंजी को देश में खुली छूट, सस्ती जमीन-बिजली का भरोसा, खनिज संसाधनों तक बेरोकटोक पहुंच का वायदा, मजदूरों के साथ मनमर्जी करने की छूट आदि कुछ कारण हैं जिससे देशी के साथ-साथ विदेशी पूंजी भी मंत्रमुग्ध है।

पर इसके साथ-साथ खाद्य सब्सिडी के मसले पर डब्ल्यू.टी.ओ. में फंसे विवाद पर मोदी-ओबामा के बीच बनी सहमति ने ओबामा का दिल जीत लिया। मोदी ने ओबामा से यह समझौता कर लिया कि 2017 तक विकासशील देशों को खाद्य सब्सिडी की छूट रहेगी। इस समय तक वे इस समस्या का हल निकाल लेंगे। इसके साथ ही व्यापार से जुड़े ट्रेड फैसिलिटेशन एग्रीमेंट (TFA) पर भारत सहमत हो गया है। इसके तहत सीमा कर की दरें अब डब्ल्यू.टी.ओ. की सहमति से तय होंगी।

ये दोनों ही मसले वर्षों से डब्ल्यू.टी.ओ. में अटके थे। खाद्य सब्सिडी व व्यापार दोनों मसलों पर विकासशील देश भारत, दक्षिण अफ्रीका, क्यूबा, बोलिविया, बनेजुएला, जिम्बाब्वे आदि अड़ गये थे परिणामस्वरूप विश्व व्यापार संगठन का एजेंडा आगे नहीं बढ़ पा रहा था। विकसित साम्राज्यवादी देश चाहते थे कि गरीब मुल्क अपने यहां खाद्यान्न सब्सिडी को विश्व व्यापार संगठन के मानकों के अनुरूप नीचे ले आयें ताकि साम्राज्यवादी खाद्यान्न कम्पनियां अपना अनाज इन देशों में पाट सकें। साथ ही साम्राज्यवादी चाहते थे कि गरीब देश सीमा कर नीचे लाकर साम्राज्यवादी मालों की पहुंच को गरीब मुल्कों के बाजारों तक आसान बना दें। परंतु गरीब मुल्कों के शासक वर्ग इस सबके लिए अपनी जनता के दबाव व देशी पूंजीपतियों को मिलने वाली प्रतियोगिता के मद्देनजर तैयार नहीं थे।

पर अब मोदी को दोनों मसलों पर राजी कर साम्राज्यवादी एक बड़ा दांव जीतने में सफल हो चुके हैं। फिलहाल तीन वर्षों के लिए खाद्य सब्सिडी के लिए मिली छूट को भारत सरकार अपनी जीत के बतौर प्रचारित कर रही है पर वे यह बात छिपा रहे हैं कि ये समझौता अगले तीन वर्षों में खाद्य सब्सिडी बेहद कम करने व अंततः विश्व व्यापार संगठन के मानदंडों के अधीन करने की ओर ले जायेगा।

इस तरह मोदी ने न केवल देश की गरीब जनता को मिल रही खाद्य सब्सिडी को छीनने का सौदा किया बल्कि अब तक सहयोगी रहे अन्य विकासशील देशों से भी अपने साथ से पल्ला झाड़ दिया। जाहिर है ओबामा का खुश होना जरूरी था और इस खुशी को वे भारत यात्रा के द्वारा खुलेआम एलान भी कर रहे हैं।

ओबामा की यात्रा भारतीय राष्ट्रवाद की समापन कथा भी है। भारत के पूंजीपति वर्ग के राष्ट्रवाद में वैसे भी कोई प्रगतिशीलता दशकों पहले ही नहीं बची थी, अब तो यह घोर प्रतिक्रियावाद में तब्दील हो चुका है। भारतीय राष्ट्रवाद ने साम्राज्यवाद या सामन्तवाद विरोध में कोई उल्लेखनीय भूमिका नहीं निभायी। ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के अंत में भारतीय मजदूरों, किसानों, सैनिकों, नौजवानों और अन्य शोषित-उत्पीड़ित लोगों के संघर्ष ही थे। भारत का पूंजीपति व भूस्वामी वर्ग तो जी-हुजूरी को ही अपना मूलमंत्र समझता था। वह आज भी वही कर रहा है।

ओबामा को गणतंत्र दिवस का मुख्य अतिथि बनाना भारत की जनता का अपमान है। यह भारत के महान शहीदों का भी घोर अपमान है। भारत के पूंजीपति वर्ग को मोदी की कूटनीति पसंद आ सकती है परन्तु भारत की जनता को मोदी की रणनीति क्षुब्ध और क्रोधित ही कर सकती है।

ओबामा-मोदी की ये गलबहियां भारत के मेहनतकशों के लिए खतरनाक हैं। दो आतताइयों का यह मिलन पूंजीपतियों-साम्राज्यवादियों के चेहरों पर रौनक लायेगा पर इस मिलन के जरिये करोड़ों मजदूर-मेहनतकशों के जीवन में अंधेरा और गहरा जायेगा। इसीलिए ओबामा-मोदी के मिलन पर देशी-विदेशी पूंजीपति तात्की पीटेंगे पर मेहनतकश जनता मुटिट्यों ताने नारे लगायेगी 'ओबामा वापस जाओ'।

संघ और मोदी का विज्ञान

राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ एक लम्बे समय से यह प्रचारित करता रहा है कि प्राचीन भारत में विज्ञान और तकनालाजी बहुत उन्नत थी, इतनी कि आज भी उसका कोई मुकाबला नहीं है। आज की हर नयी तकनालाजी को वे अपने वेद-पुराणों में खोज निकालते हैं।

जब तक विज्ञान और तकनालाजी के बारे में यह धारण केवल संघ से जुड़े हुए अर्धशिक्षित कस्बाई कूपमंडूकों तक सीमित थी तब तक इसे मजे से नजरअंदाज किया जा सकता था। माना जा सकता था कि यह राष्ट्रीय हीन भावना का शिकार अंधराष्ट्रवादी कूपमंडूकों की विक्षिप्त चोत्कार है।

लेकिन इसी तरह की बातें जब देश का प्रधानमंत्री करना शुरू करे तो मामला गंभीर हो जाता है, वह भी तब जब वह एक अति आधुनिक अस्पताल का उद्घाटन कर रहा हो। प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने हाल में सर एस एन रिलायंस अस्पताल का उद्घाटन करते हुए कहा कि महाभारत की कर्ण की कथा से पता चलता है कि उस समय जेनेटिक्स विज्ञान था क्योंकि कर्ण अपनी मां के कोख से पैदा नहीं हुआ था। इसी तरह गणेश की कथा बताती है कि उस समय प्लास्टिक सर्जरी कितनी उन्नत थी क्योंकि गणेश के धड़ पर हाथी का सिर लगाकर उसकी प्लास्टिक सर्जरी कर दी गयी थी।

जिस अस्पताल का मोदी उद्घाटन करने गये थे वह देश के सबसे बड़े उद्योगपति मुकेश अंबानी का है और उसके उद्घाटन के अवसर पर वहां फिल्मों-खेलों इत्यादि की कई नामचीन हस्तियां मौजूद थीं। वे सब मोदी के साथ फोटो खिंचाने को उत्सुक थे।

ऐसे अवसर पर मोदी ने इस तरह की कूपमंडूक बातें कहने का साहस कैसे किया? उन्होंने इसकी जरूरत क्यों महसूस की? इससे वे क्या हासिल करना चाहते थे?

असल में मोदी संघ की कूपमंडूकता को राज्यसत्ता और बड़े पूंजीपति वर्ग के स्तर पर मान्यता दिलाने का प्रयास कर रहे थे। इसके द्वारा वे संघ के लिए मान्यता हासिल करना चाहते थे। यदि संघ की कूपमंडूक विचारधारा को मान्यता मिल जाती है तो संघ को अपने आप मान्यता मिल जायेगी। तब संघ भाजपा की आड़ से बाहर निकलकर खुले प्रकाश में आ जायेगा।

नेहरू के जमाने में बना हुआ भारत के पूंजीपतियों का संविधान न केवल धर्मनिरपेक्षता की बात करता है बल्कि वह वैज्ञानिक सोच को बढ़ावा देने की बात करता है। स्वभावतः ही उसके वैज्ञानिक सोच से आशय आधुनिक विज्ञान से था न कि प्राचीन भारत के 'वेदों-पुराणों के विज्ञान' से। भारतीय राजसत्ता औपचारिक तौर पर इसी के प्रति प्रतिबद्ध है। यह अलग बात है कि वास्तविकता में यह इस वैज्ञानिक सोच से बहुत दूर रही है। इसका एक उदाहरण सरकारी भवनों इत्यादि के लिए भूमि पूजन, शिला पूजन इत्यादि में दीखता है।

मोदी अब इससे आगे बढ़कर इसे खुलेआम प्रतिष्ठित करना चाहते हैं। गुजरात में तो उन्होंने इसे बहुत पहले कर दिया था जहां उन्होंने दीनानाथ बत्रा की 'वैज्ञानिक' पुस्तकों की भूमिका लिखकर उसे विद्यालयों के पाठ्य पुस्तक के तौर पर लगवा दिया था। जो गुजरात के स्तर पर उन्होंने किया उसे वे पूरे देश के स्तर पर करना चाहते हैं।

यह साहस वे इसलिए कर रहे हैं कि भारत के बड़े पूंजीपतियों से लेकर नौकरशाहों और नामचीन हस्तियों में ऐसे लोगों की भरमार है जो धार्मिक पोंगापंथ से ग्रस्त हैं। देश में चन्द्रास्वामी, सत्य साईबाबा, आशाराम जी बापू इत्यादि का कारोबार यूं ही नहीं चलता रहा है। जो व्यक्ति सत्यसाई बाबा की कृपा से राख में उनकी मूर्ति हासिल कर सकता है वह यह भी विश्वास कर सकता है कि कुंती को कर्ण जैनेटिक टेक्नालॉजी से मिला था। यहां से वहां छलांग बहुत मुश्किल नहीं है।

पतित पूंजीवाद के इस दौर में जब छिछोरे लोग भारत में प्रधानमंत्री और अमेरिका में राष्ट्रपति बन रहे हैं तो इस बात पर आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि भारत में 'वेदों-पुराणों के विज्ञान' की बात हो रही है और अमेरिका में डार्विन के विकासवाद के साथ ईसाई धर्म की पुस्तकों में उल्लिखित उत्पत्ति कथा पढ़ाई जा रही हो। इस पर भी आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि मोदी अमेरिका में जाकर शीश नवाते फूले नहीं समाते।

(साभार: 'नागरिक' वर्ष 17 अंक 23, 01-15 दिसम्बर, 2014)

मोदी की भाजपा सरकार के एक साल

नरेंद्र मोदी के नेतृत्व वाली भाजपा सरकार के एक साल हो गये हैं। इस एक साल में मोदी ने अपने भाति-भाति के समर्थकों को निराश किया हालांकि पूंजीपति वर्ग ने अभी भी उनसे उम्मीद नहीं छोड़ी है।

नरेंद्र मोदी से तीन प्रमुख उम्मीदें थीं। भारत का पूंजीपति वर्ग यह उम्मीद करता था कि मोदी वे नीतिगत फैसले तेजी से करेंगे जिससे पूंजी निवेश तेजी से बढ़ेगा और साथ ही मुनाफे की दर में भी बढ़ोत्तरी होगी। मध्यम वर्ग यह उम्मीद करता था कि वे देश का विकास करके एक चमचमाता भारत सामने लायेंगे जो उसके सपनों का भारत होगा। आर.एस.एस. यह उम्मीद करता था कि मोदी हिन्दू राष्ट्र की दिशा में आगे बढ़ेंगे या कम से कम उस दिशा में बढ़ने में संघ के लिए बाधा नहीं पैदा करेंगे।

अब एक साल बाद इन सबकी क्या स्थिति है? मोदी ने अपने समर्थकों की उम्मीद कितनी पूरी की?

कहना नहीं होगा कि सत्ता में आते ही मोदी ने पूंजीपति वर्ग के मनोनुकूल नीतियां बनाने की दिशा में तेजी से कदम बढ़ाये। उन्होंने एक के बाद एक अध्यादेशों की झड़ी लगा दी। यह इस हद तक हुआ कि कांग्रेसी राष्ट्रपति प्रणव मुखर्जी को भी इस पर अपनी नाखुशी जाहिर करनी पड़ी। ये सारे ही अध्यादेश पूंजी निवेश को सुगम बनाने से संबंधित थे। मोदी ने इसके द्वारा इतनी सफलता हासिल की कि विश्व बैंक की नजर में भारत व्यवसाय करने की सफलता के सूचकांक में ऊंची छलांग लगाकर 122 वें से 54 वें नम्बर पर पहुंच गया।

पर इस सबसे क्या पूंजीपति वर्ग खुश हुआ? नहीं। अभी हाल के एक सर्वेक्षण में ज्यादातर पूंजीपतियों ने असंतोष जाहिर किया कि जमीन पर वास्तव में कुछ नहीं बदला है। यहां तक कि पूंजीपतियों के बड़े बुर्जुग रतन टाटा को पूंजीपतियों को यह समझाना पड़ा कि उन्हें धैर्य रखना चाहिए।

भारत के पूंजीपति वर्ग का अधैर्य कोई नई चीज नहीं है जो अबूझ पहेली हो। कांग्रेस के संग्राम शासन के दस सालों में देश के सकल घरेलू उत्पाद में औसत वृद्धि दर सात प्रतिशत रही। इस वृद्धि दर का सारा फायदा पूंजीपतियों की जेब में गया। पर पूंजीपति इतने से संतुष्ट नहीं था। पूंजी का चरित्र ही ऐसा है कि वह संतुष्ट नहीं हो सकती। बीस प्रतिशत का मुनाफा होने पर वह तीस प्रतिशत की तलाश करेगी।

मोदी ने अपने गुजरात माडल में दिखाया था कि वे ऐसा करना सुगम बना सकते हैं। दूसरी ओर सोनिया-राहुल पूंजीपतियों के लिए सब कुछ करते हुए भी हिचकिचा रहे थे और मोदी मांडल से अपनी दूरी दिखा रहे थे।

अब जब पूंजीपतियों ने सफलतापूर्वक मोदी को दिल्ली की गद्दी पर आसीन कर दिया तो वे उम्मीद कर रहे थे कि मोदी तुरंत ही सारे देश के पैमाने पर गुजरात माडल लागू कर देंगे। पर जैसा उदार पूंजीवादी रामचंद्र गुहा ने अपनी एक टिप्पणी में कहा है, सारा देश गुजरात तो नहीं है। जो गुजरात की रियासत में लागू किया जा सकता है वह सारे देश के पैमाने पर लागू किये जाने में बाधा का सामना तो करेगी।

ऐसा नहीं है कि मोदी ने ऐसा प्रयास नहीं किया। उनके प्रयासों का ही नतीजा था कि संघ की मजदूर और किसान भुजाएं यानी भारतीय मजदूर संघ और किसान संघ खुलेआम अपनी सरकार के विरोध में आ गयीं। पहला श्रम कानूनों में बड़े फेरबदल के मामले में तो दूसरा भूमि अधिग्रहण बिल के मामले में।

पर मोदी सरकार को भी अंततः उसी यथार्थ से टकराना पड़ा जिससे टकराकर संग्राम सरकार पस्त हो गयी थी। वह यथार्थ है बाजार में मालों और सेवाओं की मांग की कमी। यहां तक कि रिजर्व बैंक के गवर्नर और पूंजीपतियों के लाइले रघुराम राजन को भी कहना पड़ता है कि, 'बाजार में मांग के अभाव में ब्याज दर में कटौती से आखिर क्या हासिल होगा?'

आज आंतरिक और बाह्य दोनों बाजार संतुप्त हैं। भारत के निर्यात की ज्यादातर जगहें मांगों की कमी से जूझ रही हैं। इसके उलट चीन जैसा देश बड़ी मात्रा में माल भारत के बाजार में झोंक रहा है। भारत का आंतरिक बाजार अटा पड़ा है। ऐसे में पूंजी निवेश की गुंजाइश ही कम बचती है। विदेशी पूंजी के लिए रास्ते और खोल देने के बावजूद पाया यह जाता है कि विदेशी पूंजी के आगमन में कोई खास बढ़ोत्तरी नहीं हुई है और यदि हुई भी है तो सट्टेबाज पूंजी में। इस दिशा में यह रेखांकित करना होगा कि मोदी सरकार ने अपने सुधारों के जरिये विदेशी सट्टेबाज और गैर सट्टेबाज पूंजी के फर्क को धुंधला किया है।

मांग की इस हालत में पूंजीपति वर्ग के लिए एक ही रास्ता बचता है। वह है निवेश की उतनी ही मात्रा में मुनाफे की मात्रा को बढ़ाना यानी मुनाफे की दर को बढ़ाना। मजदूरों और किसानों से संबंधित दोनों सुधार इसी दिशा में कदम हैं और इसीलिए मोदी सरकार इन पर इतना अड़ियल रूख अपना रही है। श्रम सुधारों में परिवर्तन से मजदूर की मजदूरी घट जायेगी और उससे निचोड़ा जाने वाला मुनाफा बढ़ जायेगा। दूसरी ओर किसानों की जमीन औने-पौने दामों में छीनने से उस क्षेत्र की पूंजी पर भी मुनाफा बढ़ जायेगा। जब बिल्डर किसानों को दिये जाने वाले मुआवजे के मुकाबले पचास या सौ गुना दाम पर वह जमीन बेचते हैं तो स्वतः ही मुनाफे में अकूत बढ़ोत्तरी हासिल होती है।

यह कोई आश्चर्य नहीं कि मोदी सरकार का इंडस्ट्रीयल करीडोर और स्मार्ट सिटी पर इतना जोर है। इंडस्ट्रीयल करीडोर में उद्योग लगाने की बात उतनी महत्वपूर्ण नहीं है जितनी इसके इर्द-गिर्द शॉपिंग माल और स्मार्ट सिटी। ये बिल्डरों को अकूत मुनाफा देते हैं और इन बिल्डरों के पीछे आज देश की बड़ी पूंजी है।

अवरचना पर पूंजीपतियों का जोर भी इसी का एक पहलू है खासकर सार्वजनिक और निजी साझेदारी वाला। इसमें दो बातें प्रमुख हैं। एक तो भूमि अधिग्रहण से लेकर अन्य बाधाएं दूर करने का काम सरकार करेगी तथा प्राकृतिक संसाधन सस्ती दरों पर सुलभ करायेगी। दूसरे इसमें मुनाफा वसूली का सारा अधिकार निजी कंपनियों के पास होगा। बड़े पैमाने पर गैर मुनाफा निवेश की जिम्मेदारी भी सरकार की होगी। यह अकारण नहीं है कि रेलवे को इसी तरह सार्वजनिक-निजी साझेदारी में लाने की मुहिम शुरू की जा चुकी है और इसके लिए बहाना हासिल करने की खातिर रतन टाटा के नेतृत्व में एक विशेषज्ञ कमेटी गठित की जा चुकी है।

जैसा कि पहले इंगित किया जा चुका है इतना कुछ किये जाने पर या इनके प्रयास पर भी जमीनी स्तर पर पूंजीपतियों को कोई खास बदलाव नहीं दिखता। इसीलिए वे असंतोष महसूस करते हैं। वे तो यह उम्मीद कर रहे थे साल भर में सारा कायापलट हो जायेगा।

ऐसे में केंद्रीय सांख्यिकी विभाग द्वारा जारी सकल घरेलू उत्पाद में वृद्धि दर के नये आंकड़े उन्हें कोई सांत्वना नहीं प्रदान करते। पहले सकल घरेलू उत्पाद में ऊंची वृद्धि दर मजदूर वर्ग को अपनी जिंदगी से असम्बद्ध नजर आती थी अब यह पूंजीपति वर्ग को अपने निवेश से असंबद्ध नजर आती है। वे इस पर बहुत खुश नहीं होते कि आंकड़ों की नई पद्धति से सकल घरेलू उत्पाद में वृद्धि दर में दो प्रतिशत का इजाफा हो गया तथा इस साल यह वृद्धि दर सात प्रतिशत से ऊपर रहेगी।

यदि लगातार ऊंचा मुनाफा वसूलने वाला पूंजीपति वर्ग मोदी सरकार से खुश नहीं है तो यह उम्मीद नहीं की जा सकती कि मध्यम वर्ग उससे बहुत खुश हो जायेगा। मध्यम वर्ग ने 'विकासपुरुष' को गले लगाया था। वह भी अहसान-फरामोशी में मनमोहन सिंह और पी.चिदंबरम तथा उनकी पार्टी को भूल गया था जिन्होंने उसे नया उपभोक्तावादी

जीवन प्रदान किया था। उसे लगा था कि उसके सपनों के जो पर लगे हैं उन्हें आसमान तक पहुंचाने का काम मोदी नामक 'विकास पुरुष' कर सकता था। इसके लिए उसने मोदी के हत्यारे अतीत को भुला दिया था या स्वयं सांप्रदायिक मानसिकता के तहत मान लिया था कि यह सब तो चलता ही रहता है। असल बात है 'विकास- वह विकास जो कभी जापान ने किया था और आज चीन कर रहा है। वह अपने देश को यूरोप-अमेरिका की तरह उन्नत देखना चाहता है या कम से कम मोदी ने उसे बताया या समझाया था कि उनके गुजरात माडल के तहत भारत वैसा बन जायेगा।

आज साल भर में मोदी मध्यम वर्ग के लिए ऐसे छछूंदर बन गये हैं जिसे वह न उगल सकता है और न निगल सकता है। मोदी ने जिस 'विकास' की बात कही थी वह कहीं नजर नहीं आ रहा है। पूंजीपतियों की तरह वह भी जमीनी स्तर पर कोई बदलाव नहीं देख पा रहा है। तेल के दामों में कमी से वह थोड़ा खुश था पर अब वह देख रहा है कि मोदी के खुशनसीब से बदनसीब हो जाने के चलते तेल के दाम फिर पुराने स्तर पर पहुंच रहे हैं। किस्मत मोदी का साथ छोड़ रही है और लगे हाथों मध्यम वर्ग का भी।

मध्यम वर्ग अत्यन्त व्याकुलता से देख रहा है कि उसका 'विकास पुरुष' स्वयं मध्ययुगीनता की वकालत कर रहा है और उसके गुर्गे चारों ओर सांप्रदायिक विषवमन कर रहे हैं। वह तय नहीं कर पा रहा है कि स्वयं 'विकास पुरुष' की इसमें क्या भूमिका है? वह अपने को तसल्ली दे रहा है कि यह सब विकास पुरुष की इच्छा के विरुद्ध हो रहा है और वह जल्दी ही इन सब पर लगाम लगाकर विकास के अपने मूल एजेंडे पर वापस लौटेगा।

ठीक इसी बिंदु पर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ उल्टी दिशा में सोचता है। मोदी की भाजपा के पूर्ण बहुमत से दिल्ली में सत्तानशीन हो जाने के बाद उसे लगता था कि हिन्दू राष्ट्र की ओर बढ़ने का समय आ गया है। सारे संधी बावले हो गये थे। बाबा रामदेव से लेकर प्रवीण तोगड़िया तक सबने घोषित कर दिया था कि हमारी अपनी सरकार है। गुजरात नरसंहार वाले मोदी से अच्छा उनका हिन्दू राष्ट्र का नायक कौन हो सकता है।

पर संघ की बदकिस्मती से मोदी की जीत में जितना संघ का हाथ था उतना ही देश के बड़े पूंजीपतियों की पूंजी का भी। मोदी की जीत पर और इसीलिए मोदी की सरकार पर संधियों का इकतरफा दावा नहीं हो सकता था। यह देखते हुए कि भारतीय राज्य भारत के पूंजीपतियों का राज्य है, मोदी सरकार पर संधियों का दावा और कमजोर हो जाता था। मामले की तह में यह था कि संघ की सांप्रदायिकता को बर्दाश्त करते हुए भी भारत के बड़े पूंजीपति यानी इस बिंदु पर यह जरूरत नहीं महसूस करते कि भारतीय राज्य हिंदू फासीवादी चरित्र धारण कर ले।

परिणाम यह निकला कि मोदी ने प्रधानमंत्री बनते ही यह घोषित कर दिया कि चुनावों के समय चाहे तो कुछ कहा गया पर देश तो संविधान के हिसाब से चलेगा। इसके जरिये उन्होंने देश के पूंजीपतियों को आश्वस्त किया कि वे उनके अनुसार ही देश का शासन चलायेंगे। पर इस आश्वासन का यह कतई मतलब नहीं था कि मोदी ने अपना हिंदू सांप्रदायिक चोला पूरी तरह त्याग दिया है। इसका बस इतना मतलब था कि गुजरात का हत्यारा फिलहाल वह रूप नहीं दिखायेगा।

इसके बाद वह खेल शुरू हुआ जिसने मोदी समर्थकों और विरोधियों दोनों को छकाया। मोदी समर्थक दुःखी थे कि मोदी हिंदू सांप्रदायिक उन्मादियों को रोक क्यों नहीं रहे हैं जबकि मोदी विरोधी समझ नहीं पा रहे थे कि मोदी उन्हें खुली छूट क्यों नहीं दे रहे हैं।

दरअसल हिंदू सांप्रदायिक मोर्चे पर पिछले सालभर में जो कुछ हुआ है वह मोदी की सहमति और अनुमति से हुआ है। खासकर भारतीय जनता पार्टी और उसके नेता जिन मामलों में शामिल रहे हैं उनके बारे में यह बात निश्चयपूर्वक कही जा सकती है। आज भाजपा में मोदी का जो एकछत्र शासन है उसमें तिनका भी मोदी की अनुमति और सहमति के बिना नहीं हिल सकता। यदि लालकृष्ण आडवाणी और मुरली मनोहर जोशी तक दुबक कर अपने दड़बों में बैठे हुए हैं तो यह नहीं सोचा जा सकता है कि छोटी-छोटी मुर्गियां बिना मोदी की अनुमति और सहमति के कुडकेंगी।

स्पष्टतः हिंदू साम्प्रदायिकता की धीमी सुलगती आग मोदी की अपनी रणनीति है। एक तो इससे आज के हालात में पूंजीपति वर्ग को परेशानी नहीं होगी। दूसरे हाल-फिलहाल इससे चुनावी फसल काटते हुए कभी भी जरूरत पड़ने पर तेज आंच में भड़काया जा सकता है। इसी के साथ संघ परिवार के उन तत्वों को भी नियंत्रित या संतुलित किया जा सकता है जो कि गुजरात नरसंहार किस्म के सारे देश में तत्काल प्रयोग के हामी हैं।

ऐसे में स्वभावतः ही संघ परिवार के इस तरह के तत्वों को परेशानी होगी। वे मामले को अपनी ओर खिसकाने के लिए पूरा जोर लगायेंगे। वे हर तरीके से मोदी और भाजपा पर दबाव डालने का प्रयास करेंगे। पर उनकी कमजोरी यह है कि हाल-फिलहाल पूंजीपति वर्ग का समर्थन उसे हासिल नहीं है।

संघ परिवार के प्रमुख मोहन भागवत जब यह बयान देते हैं कि कुल मिलाकर भाजपा सरकार का शासन संतोषजनक रहा है तो यह एक औपचारिक बयान होने के साथ मामले को संतुलित करने का भी प्रयास है। वे संघ परिवार के हिंदू राष्ट्र के लक्ष्य और मोदी सरकार के बीच के तनाव को किसी तरह कम करने के लिए प्रयासरत हैं। मोदी की तरह वे भी व्यावहारिक रणनीति का परिचय दे रहे हैं।

कुल मिलाकर यह रहा है कि मोदी सरकार का एक साल। मोदी ने भाजपा के भीतर जो एकछत्र हैसियत हासिल कर ली है तथा भाजपा और राजग को जो बहुमत हासिल है उसे देखते हुए मोदी किसी और के सिर दोष नहीं मढ़ सकते। वे नहीं कह सकते कि उन्हें अपना लक्ष्य हासिल करने में किसी ने रोका। यहां तक कि वे किस्मत को भी नहीं कोस सकते क्योंकि वे स्वयं को खुशनसीब घोषित कर चुके हैं। वे विदेश में भाड़े के टट्टुओं को जुटाकर तथा उनसे अपनी जय-जयकार करवाकर अपनी छवि को बेहतर बनाने का प्रयास कर सकते हैं पर साल भर का अनुभव यह बताता है कि किराये की भीड़ से मिलने वाला सम्मान कोई बहुत कारगर साबित नहीं होता।

मोदी सरकार के आने वाले साल भी ऐसे होंगे और इसी में असल खतरा मौजूद है। हालात ऐसे रहने पर मोदी और भाजपा के लिए स्पष्ट होगा कि अगले चुनावों में उनकी नैया पार नहीं लगेगी। उनका हथ्र कांग्रेस जैसा भले न हो पर वापस सत्ता में लौटना मुश्किल होगा।

ऐसे में मोदी और भाजपा गुजरात के 2002 मॉडल की तरफ लौट सकते हैं। विकास का गुजरात माडल के असफल होने के बाद हिंदू साम्प्रदायिकता का गुजरात मॉडल ही एकमात्र रास्ता बचेगा। यह पूर्णतया संघ के एजेंडे के अनुरूप होगा और मोदी द्वारा सुलगाकर रखी गयी आग बहुत सहायक साबित होगी। अमित शाह और मोदी की जोड़ी पूरे देश को साम्प्रदायिकता की धधकती आग में झोंक सकती है।

इस संभावना को रोकने का एक ही तरीका है। बड़े पैमाने पर इसके खिलाफ अभी से एकजुट संघर्ष। कहने की बात नहीं कि यह केवल मजदूर वर्ग के नेतृत्व में बाकी मेहनतकश आबादी को गोलबंद करके ही संभव है।

(साभार: 'नागरिक' वर्ष 18 अंक 11, 01-15 जून, 2015)

‘अच्छे दिनों का जश्न’ या झूठ-फरेब की मार्केटिंग

मोदी सरकार का एक वर्ष

‘अच्छे दिनों’ का वायदा करके 2014 में सत्तासीन हुई भारतीय जनता पार्टी नीत राजग सरकार या मोदी सरकार का एक वर्ष पूरा हो गया है। इस एक वर्ष में देश की जनता की हालत में कोई तब्दीली आई हो या नहीं आयी हो, वह बेहतर हुई या बदतर, इस सबसे अलग मोदी सरकार अपनी उपलब्धियों का बखान करने के लिए महाअभियान चलाने जा रही है। इस महाअभियान के तहत देशभर में 200 रैलियां, 200 प्रेस कॉन्फ्रेंस एवं 5000 जनसभाएं आयोजित की जायेंगी जिनके द्वारा अब तक ‘अच्छे दिनों’ की बात जोह रही जनता को आंकड़ों व जुबान की बाजीगरी द्वारा ‘अच्छे दिनों’ का अहसास कराया जायेगा। ‘काले धन’ पर मोदी द्वारा चुनाव के दौरान जनता से किये गये वायदों को सत्तासीन होने के कुछ समय बाद उनके मुख्य सिपाहसालार व भाजपा के मौजूदा अध्यक्ष अमित शाह ने चुनावी जुमला बताकर खारिज कर दिया था कि झूठे वायदे करने में उनका कोई सानी नहीं और अब अपनी उपलब्धियों का बखान कर वे यह साबित करने पर तुले हैं कि झूठ की मार्केटिंग करने में भी वे हिटलर के प्रचार मंत्री गोएबेल्स के सच्चे अनुयायी हैं।

पिछले एक वर्ष में अर्थव्यवस्था एवं समाज कल्याण के मद्दों का जायजा लेते हुए ‘मोदी के आर्थिक विकास के मॉडल’ को समझने में कोई विशेष प्रयास की जरूरत नहीं है। तथ्य खुद ही सत्य को बयां कर देते हैं। कृषि एवं सिंचाई जो भारत की अर्थव्यवस्था में 17 प्रतिशत का योगदान करते हैं और भारत की आबादी के 62.5 प्रतिशत एवं कामगार आबादी के 49 प्रतिशत को समाहित करते हैं। मोदी के आर्थिक विकास के मॉडल के तहत बुरी तरह प्रभावित हुए हैं। राष्ट्रीय कृषि विकास योजना के फंड में केन्द्र सरकार द्वारा 7,426.50 करोड़ रुपये की कटौती की गयी है। पशुपालन एवं डेयरी विकास योजना में 685 करोड़ की कटौती की गयी है। इसी तरह प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना में 8,156.22 करोड़ की कटौती की गयी है। यह अकारण नहीं है कि कृषि विकास दर 2013-14 में 4.7 प्रतिशत के मुकाबले 2014-15 में 1.1 प्रतिशत पहुंच गयी है।

भाजपा के सत्ताशीन होने के एक वर्ष के भीतर जोती जाने वाली जमीन का रकबे में 33.22 लाख हेक्टेअर (3.322 मिलियन हेक्टेअर) की कमी आयी है और खाद्यान्न उत्पादन 2013-14 के 2650 लाख टन से गिरकर 2014-15 में 2500 लाख टन रहने की उम्मीद है।

कपास किसानों को 2013-14 में जहां प्रति क्विंटल कपास पर 4800 से 4900 रुपये मिले थे वहीं 2014-15 में उन्हें मात्र 3900 से 4000 रुपये ही मिले। इसी तरह बासमती उत्पादकों को 2013-14 में प्रति क्विंटल 4100-4200 रुपये के मुकाबले 2500-2600 रुपये प्रति क्विंटल हासिल हुए। इसी तरह रबर उत्पादक किसानों को पिछले वर्ष में प्रति किलो 150-155 रु. के मुकाबले इस वर्ष केवल 115-120 रुपये प्रति किलो मूल्य मिला। उद्योगपतियों का गन्ना किसानों का बकाया 20,000 करोड़ रुपये से ऊपर पहुंच गया है।

उत्पादन में गिरावट एवं कृषि उत्पादों के मूल्यों में गिरावट का असर ग्रामीण अर्थव्यवस्था के संकुचन पर पड़ा है। महात्मा गांधी ग्रामीण रोजगार योजना (मनरेगा) के बजट में कटौती ने स्थितियों को और विकट बनाया है। 2014-15 में केन्द्र सरकार ने राज्यों को मनरेगा हेतु 6000 करोड़ से अधिक रकम आवंटित नहीं की जिसके चलते नये रोजगार सृजन व नई परियोजनायें लेने का काम अधर में लटक गया। मनरेगा के तहत सृजित रोजगारों (दिहाड़ी) में पिछले एक वर्ष में 20 प्रतिशत की गिरावट आयी है। 2014-15 में जहां मनरेगा के तहत मिलने वाले दिहाड़ी रोजगार की संख्या 1.47 अरब थी वहीं अप्रैल से दिसंबर, 2014 में यह 1.117 अरब रह गयी। असम जैसे राज्य में तो इसमें 31 प्रतिशत की गिरावट आयी है।

मोदी सरकार की नजर गरीबी रेखा के नीचे रहने वाले करोड़ों लोगों पर भी लगी है जिन्हें ‘खाद्यान्न सुरक्षा कानून’ के तहत प्रति व्यक्ति प्रतिमाह पांच किग्रा खाद्यान्न मिलता है। मोदी सरकार द्वारा गठित शांता कुमार कमेटी ने सिफारिश की है कि ‘खाद्य सुरक्षा कानून’ के तहत लाभांशित होने वाले लोगों की संख्या को 67 प्रतिशत से लेकर 40 प्रतिशत तक सीमित कर दिया जाय।

दिसंबर, 2014 के खाद्य मंत्रालय के बुलेटिन के अनुसार राज्यों के लिए कुल 388 लाख टन खाद्यान्न का आवंटन किया गया है। यह राशि ‘खाद्य सुरक्षा कानून’ के अस्तित्व में आने से पहले की राशि के बराबर है। जाहिर है कि मोदी सरकार की कोई रुचि ‘खाद्य सुरक्षा कानून’ में नहीं है बल्कि वह सार्वजनिक वितरण प्रणाली को ही ध्वस्त कर देना चाहती है। मोदी सरकार ने ‘खाद्य सुरक्षा कानून’ की भावना व जरूरत के अनुरूप खाद्यान्न की आपूर्ति न करके गरीबों का पेट काटकर 1,03,000 करोड़ रुपये की सब्सिडी की बचत की है।

कुल मिलाकर सार्वजनिक कल्याण के सामाजिक कार्यक्रमों के मद में मोदी सरकार ने एक वर्ष में पौने दो लाख करोड़ की कटौती की है।

गरीबों को थोड़ा बहुत राहत देने वाली योजनाओं के आवंटन में मोदी सरकार ने 66 हजार करोड़ रुपये कम कर दिये। देश के पिछड़े इलाकों को मिलने वाले अनुदान में 6000 करोड़ रुपये इस साल कम कर दिये।

‘राष्ट्रीय जीवन यापन मिशन’ भी मोदी सरकार को एक फालतू का खर्च लगता है इसलिए इसके बजट में भी मोदी सरकार ने 1632.50 करोड़ रुपये की कटौती कर दी।

मोदी सरकार ने पंचायत राज के बजट को भी 98 प्रतिशत घटा दिया है। 3400 करोड़ रुपये के पंचायती राज के बजट को उन्होंने महज 94 करोड़ रुपये में निपटा दिया।

बच्चों के साथ फोटो खिंचवाने व सेल्फी बनाने के द्वारा आधुनिक चाचा नेहरू बनने का उपक्रम करने वाले नरेंद्र मोदी की सरकार ने प्राथमिक शिक्षा का बजट अपने पहले ही साल में दस हजार करोड़ रुपये व माध्यमिक शिक्षा का बजट डेढ़ हजार करोड़ रुपये घटा दिया है।

‘राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन’ का बजट भी 3,650 करोड़ रुपये कम कर दिया गया है।

अपने चुनावी भाषणों में मोदी ने 2022 तक सभी को मकान देने का वायदा किया था लेकिन यह वायदा कितना फर्जी था उसका खुलासा पहले साल में ही मिल गया है। गौरतलब है कि इस साल आवास योजनाओं के बजट में चार हजार करोड़ रुपये से ज्यादा की कटौती की गयी है।

इसी तरह स्वच्छता अभियान का अनथक हल्ला मचाने वाले मोदी ने वास्तव में पेयजल और सफाई सहित इस अभियान पर होने वाले खर्च में इस साल पहले के मुकाबले नौ हजार करोड़ रुपये की कटौती की है। हां, इस अभियान के विज्ञापन खर्च में जरूर बढ़ोतरी होने की उम्मीद है।

मोदी के राज में जहां बात-बात पर अध्यादेश लाने का चलन कुछ यूं शुरू हुआ कि इस सरकार का नाम अध्यादेश सरकार पड़ गया। अपने प्रधान सचिव की नियुक्ति के लिए भी अध्यादेश लाने वाली मोदी सरकार ने पिछली यूपीए सरकार के एक महत्वपूर्ण अध्यादेश को ठंडे बस्ते में डालकर अपनी मौत मर जाने दिया। यह अध्यादेश अनुसूचित जातियों व जनजातियों पर होने वाले अत्याचारों से निपटने के लिए लाया गया था। निश्चित तौर पर हर पूंजीवादी कानून की तरह इस कानून की अपनी सीमाएं होतीं लेकिन तब भी जाति उत्पीड़न के एजेंडे के प्रति मोदी सरकार कितनी संवेदनशील है यह इस अध्यादेश की अनदेखी व उपेक्षित मौत बयां कर देती है। यह अकारण नहीं है कि भारतीय जनता पार्टी शासित हरियाणा व राजस्थान में पिछले एक वर्ष में दलित आंदोलन की घटनाओं में काफी वृद्धि हुई है। अनुसूचित जातियों/जनजातियों के प्रति होने वाले अत्याचार को रोकने हेतु पिछली सरकार द्वारा लाये गये अध्यादेश में यह व्यवस्था थी कि जिला स्तर पर विशेष अदालतों का गठन कर मामलों की सुनवाई की जाय और न्याय दिलाने के लिए सरकारी वकीलों की खास तौर पर नियुक्ति की जाय। इस अध्यादेश के तहत गले में जूतों की माला पहनाकर घुमाने जैसे मामलों को भी अपराध की श्रेणी में शामिल किया गया था।

इसी तरह एक कदम आगे रहकर मोदी सरकार ने इस साल अनुसूचित जाति उप-योजना का बजट तेरह हजार करोड़ रुपये कम कर दिया और अनुसूचित जनजाति उप-योजना का बजट भी साढ़े सात हजार करोड़ रुपये घटा दिया। 'सबका विकास सबका साथ' का नारा किस कदर धोखा है इसकी यह महज एक झलक भर है।

मोदी सरकार द्वारा सबसे जबरदस्त हमला मजदूर वर्ग पर बोला गया। सत्ता ग्रहण करते ही श्रम कानूनों में संशोधनों की झड़ी लगाकर जहां पूंजीपतियों को मजदूरों के निर्बाध शोषण की छूट दी गयी वहीं मजदूरों के श्रम अधिकारों को खत्म करने अथवा निष्प्रभावी बनाने की कवायद में मोदी सरकार लगी हुई है। मजदूरों के कार्यदिवस, ओवर टाइम बढ़ाने, महिलाओं से रात की पाली में काम करवाने, अप्रेंटिस एक्ट के तहत कुशल श्रम को सस्ते में पूंजीपतियों को उपलब्ध कराने, यूनियन बनाने की प्रक्रिया को और कठिन व जटिल बनाने, पूंजीपतियों को कुछ उद्यमों में रिटर्न भरने व रजिस्टर रखने से छूट, फैक्टरी इंस्पेक्टर के छापों से मुक्ति, श्रम कानूनों के अनुपालन में स्वप्रभावन की सुविधा जैसी अनेक छूटें मिली हैं। श्रम कानूनों में सुधार की प्रक्रिया निरंतर जारी है। पूंजीपति वर्ग की मांग है कि 44 केंद्रीय श्रम कानूनों को 4 मुख्य कानूनों के तहत समाहित कर श्रम कानूनों के व्यापक 'जंजाल' से उन्हें मुक्ति दिलायी जाय। मोदी सरकार इस ओर प्रयासरत है।

मोदी सरकार किस कदर पूंजीपतियों पर मेहरबान है इसका मुजाहिरा उसने गौतम अदानी को 6 हजार करोड़ रुपये का कर्ज देकर किया है। गौरतलब है कि दुनिया के प्रमुख बैंक अदानी को आस्ट्रेलिया में कोयले की खदान के लिए कर्ज देने से इंकार कर चुके हैं। अदानी समूह पर 55,364.94 करोड़ रुपये दीर्घकालिक कर्ज है और तीन सितंबर, 2011 को 17,267.93 करोड़ रुपये का लघु अवधि का कर्ज था। जाहिर है कि दुनिया में बैंक अदानी को कर्ज देने से क्यों इंकार कर रहे थे। लेकिन मोदी ने अपने इस चहेते पूंजीपति, जो गुजरात में भी उनका प्यारा था, को स्टेट बैंक ऑफ इंडिया से 6000 करोड़ का कर्ज दिलाया जो किसी भी विदेशी परियोजना के लिए अब तक का सबसे बड़ा कर्ज है।

मोदी सरकार किस बेशर्मी की हद तक पूंजीपतियों का हित साधने में लगी है इसका अंदाजा भूमि अधिग्रहण अध्यादेश लाने की उसकी हड़बड़ी में दिखाई देता है। देश भर में भूमि अधिग्रहण आलोचना के बावजूद मोदी सरकार इस अध्यादेश को लाने की जिद पर अड़ी है।

इसी तरह खनन के क्षेत्र में कारपोरेट क्षेत्र की राह में एक बड़ी बाधा पर्यावरणीय मानदंडों को शिथिल व निष्प्रभावी बनाकर मोदी सरकार ने देशी-विदेशी पूंजी को लूट की छूट ही दी है।

मोदी का 'मेक इन इंडिया' कार्यक्रम का अंतर्ग यह है कि विदेशी पूंजीपतियों आओ भारत के सस्ते श्रम व संसाधनों को भरपूर निचोड़ो।

पूंजीपतियों को लूट की निर्बाध छूट के हिमायती मोदी को इस मामले में विरोध की हल्की सी आवाज भी बर्दाश्त नहीं इसलिए पर्यावरण के मामले पर हल्ला करने वाले एन.जी.ओ. को वह देशद्रोही करार देती है, उनके खाते व फंड पर रोक लगाती है। किसानों और मजदूरों के साथ इस सरकार का व्यवहार कैसा होगा। इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती है।

कुल मिलाकर मोदी ने पिछले एक साल में यह साबित किया कि वे पूंजीपति वर्ग के अब तक के सबसे उत्साही सेवक हैं, प्रधान सेवक हैं। देश के मजदूर-मेहनतकश जनता को वे भ्रमित करने का कितना भी प्रयास करें उनका असली चेहरा एक साल में बेपर्दा हो गया।

(साभार: 'नागरिक' वर्ष 18 अंक 12, 16-30 जून, 2015)

भारतीय संस्कृति, योग और बाबा-मोदी

प्राचीन भारतीय संस्कृति के बारे में जो अनेक किंवदंतियां प्रचलित हैं उनमें से कुछ योग से भी संबंधित हैं। इनमें जहां अधिकांश भारतीय विश्वास करते हैं वहीं विदेशियों के लिए वे कौतूहल का विषय होती हैं। पहले विदेशियों के लिए यह सांपों और सन्यासियों का देश था और सन्यासियों का संबंध योग से भी था। सन्यासियों की अजीबोगरीब योग क्रियाओं और योग सिद्धियों के बारे में बातें आम थीं।

योग की उत्पत्ति चाहे जिन आदिम शारीरिक क्रियाओं और अनुष्ठानों से हुई हो पर यह बात स्पष्ट है कि गौतम बुद्ध के जमाने तक इसने पर्याप्त स्वीकार्यता हासिल कर ली थी। बाद की गौतम बुद्ध और महावीर जैन की योग मुद्रा में मूर्तियां इसका प्रमाण हैं।

बाद के समय में जब भारतीय दर्शन शाखाओं की चर्चा होती है तो योग इनमें से एक होता है। पर सही मायनों में कोई दर्शन होने के बदले वह एक ऐसी शारीरिक क्रिया विधि था जिसे लगभग सारे परम्परागत दार्शनिक अपनाते थे।

योग के बारे में चमत्कारिक शक्तियों की बातें ज्यादातर इसके तंत्रवाद से जुड़ने के साथ पैदा हुईं। तंत्रवाद खुद अपनी बारी में प्राचीनकाल से चले आ रहे कबीलाई अनुष्ठानों के साथ सम्बन्ध रखता था, जो किसी देवी-देवता या ईश्वर में विश्वास के बदले निश्चित अनुष्ठानों और क्रियाओं द्वारा सिद्धि की बात करता था। इसीलिए देवी प्रसाद चट्टोपध्याय जैसे दार्शनिकों ने इसका सम्बन्ध आदिम भौतिकवाद से जोड़ा है।

तांत्रिकों का अजीबोगरीब रहन-सहन तथा उनकी अजीबोगरीब क्रियाएं आम जन के लिए हमेशा ही रहस्य और कौतूहल का विषय रही हैं। इसीलिए उनके बारे में बहुत सारी जनश्रुतियां जनसाधारण में फैल गयीं। इसमें हवा में उड़ना, पानी पर चलना तथा अपने शरीर को छोड़कर कहीं और चले जाना सब शामिल हैं। माना जाता था कि इसमें अन्य चीजों के अलावा योग का भी योगदान है। खासकर हठयोग और हठयोगियों के बारे में तो बहुत सारे किस्से प्रचलित थे।

जाति-वर्ण व्यवस्था में जकड़े हुए भारत के पिछड़े सामंती समाज में ज्ञान-विज्ञान बहुत ही कम लोगों तक सीमित था। यहां तक कि शासक वर्गों का बड़ा हिस्सा भी मूढ़ था। मूढ़ता वाले इस समाज में अजीबोगरीब किस्सों के लिए पर्याप्त संभावना थी। इन किस्सों में साधु-सन्यासियों और उनके करतबों के किस्से भी थे। योग इन करतबों में से एक था।

यह किस हद तक था वह इस बात से पता चलता है कि प्रेमचन्द ने एक पूरा उपन्यास 'कायाकल्प' इस तरह के करतबों पर ही लिखा। उनके अन्य उपन्यासों मसलन 'प्रेमाश्रम' में योग की महिमा मौजूद है।

जब भारत में अंग्रेजों द्वारा आधुनिक ज्ञान-विज्ञान का प्रसार हुआ तो जहां पढ़े-लिखे एक हिस्से में प्राचीन भारत और भारत की अन्य चीजों के लिए हिकारत का भाव पैदा हुआ तो वहीं दूसरे हिस्से में हर भारतीय चीज के लिए अनालौचनात्मक लगाव पैदा हुआ। यह हिस्सा स्वयं को राष्ट्रवादी कहता था। अंग्रेजों के मुकाबले अपने पिछड़ेपन के प्रति सचेत यह हिस्सा जान-बूझकर हर प्राचीन भारतीय चीज का महिमामंडन करता था। जहां तिलक जैसे लोगों और बाद में हिन्दू महासभा तथा संघ परिवार के मामले में यह चीज भौंडे रूप में मुखर थी वहीं गांधी-नेहरू जैसे नेता भी इससे मुक्त नहीं थे।

माना जा सकता था कि अंग्रेजों के जाने के बाद यह स्थिति बदल जायेगी। एक गुलाम देश को राष्ट्रीय हीन भावना से मुक्ति मिल जायेगी तथा ज्ञान-विज्ञान के प्रसार के बाद मूढ़पन खत्म हो जायेगा और पुराने किस्सों-कहानियों के लिए कोई जगह नहीं बचेगी। भारत भी यूरोप की तरह आधुनिक युग में प्रवेश कर जायेगा।

पर न ऐसा हो सकता था और न हुआ। भारत में ज्ञान-विज्ञान का प्रसार तो हुआ पर यह स्वयं पोंगापंथ में लिथड़ा हुआ था। यहां विज्ञान के स्नातकों और स्नातकोत्तरों से यह उम्मीद नहीं की जा सकती कि वे विज्ञान और पोंगापंथ में फर्क कर सकें।

और जब इसीलिए एक खास तरह के सामाजिक संकट ने- परंपरागत छोटी सम्पत्ति वालों के जीवन के संकट ने- संघी राजनीति को आगे बढ़ाया तो अचानक ऐसा लगा मानो पूरा भारतीय समाज ही मूढ़ों की जमात में परिवर्तित हो गया है। अचानक ही पूरा भारतीय समाज रामायण और महाभारत का दीवाना हो गया। अब यह नारा हवा में गूँजने लगा कि, 'गर्व से कहो कि हम हिन्दू हैं'। इसका वास्तविक आशय यह था कि अपनी कूपमंडूकता, जाहिलेपन और दकियानूसीपने के लिए शर्मिंदा नहीं होना चाहिए। हर चीज का झंडा बुलंद करना चाहिए जिससे प्राचीनता की बू आती हो।

योग तो तब भी एक काम की चीज थी। योग के बारे में तमाम किस्से-कहानियों के बावजूद यह सच था कि शरीर और मन को स्वस्थ रखने में इसकी एक सार्थक भूमिका बन सकती है। खासकर आधुनिक जीवन शैली में बहुत सारी चीजें ऐसी थीं जिसमें इसका बेहतर उपयोग हो सकता था। यह आधुनिक चिकित्सा पद्धति यानी ऐलोपैथ का विकल्प नहीं था पर यह अच्छे पूरक का काम कर सकता था।

और वस्तुतः बहुत सारे लोग इस रूप में इसका प्रचार भी कर रहे थे- कुछ वास्तविक आत्मसंतुष्टि के लिए, तो ज्यादातर व्यावसायिक कारणों से। बहुत सारे भारतीय गुरु तो विदेशों में इसी के लिए जाने जाते थे। इसके चलते विदेशों में भी किसी हद तक योग को मान्यता और लोकप्रियता मिली।

और तब, जिसे कहते हैं, बाबा रामदेव और नरेंद्र मोदी का जन्म हुआ और योग ने एक नया जीवन हासिल कर लिया।

बाबा रामदेव ऐसे सज्जन या दुर्जन हैं जिन्होंने योग को पूंजीपति वर्ग और उच्चमध्यम वर्ग की दुनिया से बाहर मध्यम वर्ग और निम्न मध्यम वर्ग तक इसे पहुंचाया। खासकर, इसे बाबुओं, मास्टर्स और छोटे दुकानदारों की दुनिया तक पहुंचाया।

आबादी के सारे कूपमंडूक हिस्सों में यह सबसे ज्यादा कूपमंडूक हैं। यह किसी भी कूपमंडूकता के लिए सुग्राही होता है और आसानी से उन्मादी बनाया जा सकता है।

इस कूपमंडूक आबादी में योग के किस्से पहले भी प्रचलित थे पर बाबा रामदेव के पहले वह मानता था कि योग इतनी ऊंची क्रिया है कि वह उसके अनुकूल नहीं है। वह केवल हसरतभरी निगाहों से उसकी ओर देख सकता है।

पर बाबा रामदेव ने यह सब बदल दिया। उन्होंने अपने पेट की अंतर्द्वारों नचाकर उसे योग की महिमा के प्रति न केवल फिर से आश्वस्त किया बल्कि उसे समझाया कि वह स्वयं भी योग कर सकता है। बाबा रामदेव सरीखी बिना चर्बी की काया का वह भी मालिक बन सकता है। लगातार शारीरिक और मानसिक बीमारियों से जूझते रहने वाले बेढब तोंद के मालिक बाबुओं, मास्टर्स और दुकानदारों के लिए यह दुर्निवार प्रलोभन था। वे इससे बच नहीं सकते थे। वे दनादन बाबा रामदेव के योग शिविर में पहुंचने लगे और बाबा रामदेव का योग का धंधा चमकने लगा।

कुशल व्यवसायी बाबा रामदेव ने अपने योग के धंधे की सफलता के साथ एक और चाल चली। उन्होंने एक और दावा किया कि योग से सारी शारीरिक और मानसिक बीमारियों का इलाज हो सकता है तो साथ ही योग शिविर के बाहर भांति-भांति की आयुर्वेदिक दवाएं बेचने लगा। तर्क यह था कि कुछ लोग इतने आलसी और प्रमादी हो गये हैं कि योग नहीं कर सकते। उनके लिए ये आयुर्वेदिक दवाएं हैं। कहने की बात नहीं कि कूपमंडूकता और मूढ़ता के शिकार लोगों में आयुर्वेद के प्रति भी योग की तरह ही रहस्यमय आकर्षण था। 'आयुर्वेदिक दवाओं का कोई साइड इफेक्ट नहीं होता'- इसका सबसे बड़ा नारा है।

देखते-देखते रामदेव की दुकान चमक गयी और योग का बड़े स्तर पर प्रसार हो गया। भले ही एक प्रतिशत लोगों की भी तोंद की चर्बी न घटी हो पर स्लिम-ट्रिम दिखने की हसरत उन्हें उधर धकेलती रही। रही-सही कसर शिल्पा शेट्टी और विपाशा बसु ने पूरी कर दी जिनकी छरहरी काया के साथ योग के आसन कई बार बुद्धू बक्से पर दीख जाते थे।

योग और आयुर्वेद की अपनी दुकान चमकने के बाद बाबा रामदेव की हसरतें बहुत बढ़ गयीं। उन्होंने बड़ी राजनीतिक महत्वाकांक्षाएं पाल लीं। और जब अन्ना हजारे जैसे अनाड़ी जमूरे के नाम पर दिल्ली में लाखों लोगों की भीड़ उमड़ पड़ी तो बाबा रामदेव के लिए यह गुमान पाल लेना स्वाभाविक था कि वे करोड़ों की भीड़ को अपने पीछे इकट्ठा कर सकते हैं और भारत के नीति नियंता बन सकते हैं और तब इस महत्वाकांक्षा के साथ उन्होंने दिल्ली में कई बार छापेमारी की। यह राजनीतिक संधमारी भी थी क्योंकि यह भाजपा और संघ परिवार के परंपरागत राजनीतिक आधार में संध लगाने के समान था।

कई बार प्रयास करने के बाद, जिसमें एक बार उन्हें महिलाओं के कपड़े पहनकर दिल्ली से छिपकर भागना भी पड़ा था, बाबा रामदेव के सामने स्पष्ट हो गया कि उनकी राजनीतिक महत्वाकांक्षाएं परवान नहीं चढ़ सकतीं। वे भाजपा और संघ परिवार को पराजित नहीं कर सकते।

बाबा रामदेव के इस नतीजे तक पहुंचने तक भाजपा में मोदी का सितारा बुलंद हो चुका था। पूंजीपति और संघ ने मोदी को भाजपा का प्रधानमंत्री पद का उम्मीदवार घोषित करवा दिया था। अब बाबा रामदेव ने ट्रैक बदला और स्वयं को मोदी का मुरीद घोषित कर दिया। यह कुछ इस भाषा में किया गया कि वे मोदी जैसे राजपुरुष के राजऋषि बनना चाहते हैं।

पर मोदी तो मोदी ठहरे। वे क्यों बाबा रामदेव जैसे उठाईगिरे को अपना अंकुश बनने देते? पर हर किसी की तरह बाबा रामदेव का भी इस्तेमाल करने में कोई दिक्कत नहीं महसूस हुई।

मोदी के चुनाव जीतकर प्रधानमंत्री बनने के बाद बाबा रामदेव राजऋषि तो नहीं बन पाये पर उन्हें यह आश्वासन जरूर मिला कि वे अपना योग और आयुर्वेद का धंधा बिना किसी विघ्न के जारी रख सकते हैं। इस बीच उन्होंने किराने का अपना धंधा भी इसके साथ जोड़ लिया।

चुनाव जीतकर प्रधानमंत्री बनने के बाद से ही मोदी की एक नीति रही है। ऊपरी तौर पर, घोषित तौर पर वे खुद को विकास पुरुष के रूप में पेश करते हैं पर साथ ही वे छिपे तौर पर और जमीनी स्तर पर हिन्दू सांप्रदायिक एजेंडे को आगे बढ़ाते रहते हैं। कई बार वे यह दिखाने का भी प्रयास करते हैं कि इस सांप्रदायिक एजेंडे से उन्हें परेशानी है। पर असल में वे इससे न केवल परेशान नहीं हैं बल्कि इसके हामी हैं।

जमीनी स्तर पर बेहद कारगर सांप्रदायिकता की इस धीमी आंच के बारे में मोदी के मुरीद यह प्रचार करते हैं कि यह भाजपा और संघ के हाशिये के तत्वों द्वारा किया जाता है। पर असल में ऐसा है नहीं। ऐसे तत्वों और उनकी गतिविधियों को सीधे मोदी और उनके चले अमित शाह का समर्थन हासिल होता है। यदि उन्हें यह समर्थन हासिल नहीं होता तो ये तत्व अपनी गतिविधियों के लिए मिनटों में भाजपा से बाहर कर दिये जाते।

सांप्रदायिकता की इस धीमी लौ में जहां छोटे-छोटे सांप्रदायिक दंगे और लव-जेहाद जैसे अभियान आते हैं वहीं सरकारी संस्थाओं का भगवाकरण तथा हर स्तर पर हिन्दू मानसिकता को प्रोत्साहन भी इसके हिस्से हैं। मोदी सरकार द्वारा योग को प्रोत्साहन को भी इसी नजरिये से देखा जाना चाहिए। यह नहीं भूलना चाहिए कि 21 जून राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के संस्थापक हेडगेवार का जन्म दिन भी है।

यह घोषित करते हुए कि योग का धर्म से संबंध नहीं है और यह सभी के लिए है, संघियों ने जो कुछ किया वह काबिलेतारीफ है। उन्होंने दो मुंहा बातों की एक और नजीर पेश कर दी। 'जो गौ मांस खाना चाहते हैं वे पाकिस्तान चले जायें' की तर्ज पर उन्होंने बार-बार घोषित किया कि जो योग नहीं करना चाहते वे पाकिस्तान चले जायें। यानी योग भी एक ऐसी हिन्दू चीज है जिसे हिन्दुस्तान में हर किसी को अपनाना पड़ेगा। यह वही चीज है जिसे संघी 'भारतीय संस्कृति' कहते हैं जिसे हर धर्म के अनुयाइयों को अपनाना होगा भले ही वह उनकी धार्मिक आस्थाओं के कितना खिलाफ हो।

इस तरह योग का एक बड़े तमाशे के रूप में आयोजन जहां नरेंद्र मोदी की अपनी व्यक्तिगत बम-बम कार्यशैली और आत्ममहिमामंडन के अनुरूप था वहीं वह हिन्दू सांप्रदायिकता को आगे बढ़ाने के एक बड़े अभियान का हिस्सा भी था। वैसे भी मोदी में दोनों चीजें अक्सर ही आपस में घुल-मिल जाती हैं। 2002 का गुजरात का नरसंहार जहां एक ओर हिन्दुत्व की प्रयोगशाला का एक बड़ा प्रयोग था वहीं नये-नये मुख्यमंत्री बने मोदी का अपनी गद्दी सुरक्षित करने का संघी रामबाण भी था। हिटलर के जमाने से ही ऐसे मामलों में व्यक्तिगत और सामाजिक का सम्मिलन रहा है। दोनों लक्ष्य एक साथ हासिल किये जाते रहे हैं।

ललित मोदी कांड में चारों ओर से घिर रही मोदी सरकार एवं स्वयं नरेंद्र मोदी के बचाव के लिए पूंजीवादी प्रचार माध्यमों ने योग दिवस का जमकर इस्तेमाल किया। तीन-चार दिनों तक इसी की गूंज रही है और रविवार 21 जून को तो मानो इसके अलावा कुछ था ही नहीं। यह इस कदर था कि इस धारा में राज्य सभा का टी.वी. का न बजना भाजपा के महासचिव राम माधव को खटक गया।

पर सारे संघी आयोजन के तहत इस अयोजन का 'प्रचार' कुछ और था तथा 'यथार्थ' में कुछ और। योग दिवस का आयोजन सरकार के आयुष विभाग ने किया था जिसे सफल बनाने के लिए भाजपा और संघ ने ऐड़ी-चोटी का जोर लगा दिया। इसके साथ बाबा रामदेव सहित सारे योग गुरु भी इसमें शामिल थे। पर इस सबके बावजूद इसमें आई भीड़ से यह नहीं लगता कि मोदी और संघ परिवार को कोई खास सफलता मिली।

सरकारी कर्मचारियों, संघ-भाजपा के कारकूनों तथा अपने जीवन में स्वतः योग करने वालों की कुल संख्या बहुत हो जाती है पर इसके दस प्रतिशत लोग भी योगपथ पर नजर नहीं आये। अपनी पीठ थपथपाने के बावजूद मोदी सरकार इस मामले में सफल नहीं हो पायी।

यहीं संघी परियोजना और मोदी की सीमा नजर आती है लेकिन साथ ही यहीं संघ और मोदी का खतरा भी स्पष्ट होता है। अपने सारे प्रयासों के बावजूद संघ और मोदी बहुत सफल नहीं हो रहे हैं। इसमें चुनाव के समय मोदी के हवाई वादे और इस समय उसकी वास्तविक स्थिति महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहे हैं। बहुत सारे गैर सांप्रदायिक मोदी समर्थक मोदी से निराश हो रहे हैं। कुछ लोगों ने तो वापस कांग्रेस की ओर झांकना भी शुरू कर दिया है।

ऐसी स्थिति में मोदी और संघ क्या करें? किधर की ओर रुख करें? लव-जेहाद अभियान से लेकर हाल में हरियाणा में अटली तक दिखाते हैं कि संघ और मोदी की दिशा पहले से तय है। भेड़िये ने भेड़ की खाल ओढ़कर अपने नाखूनों और बनैले दातों को छिपा लिया है। लेकिन वह कभी भी इस खाल को उतारकर सामने असली रूप में आ सकता है।

आज सर्वेश्वर दयाल सक्सेना जिंदा होते तो शायद वे अपनी 'भेड़िये' शीर्षक कविता में कुछ और जोड़ते।

(साभार: 'नागरिक' वर्ष 18 अंक 13, 01-15 जुलाई, 2015)

मोदी सरकार द्वारा मजदूरों पर भीषण हमला

श्रम कानूनों को विघटित करने की पूरी तैयारी

यू तो मोदी सरकार ने पिछले वर्ष सत्ता ग्रहण करते ही पांच केन्द्रीय श्रम कानूनों में प्रस्तावित संशोधनों के द्वारा अपने घोर पूंजीपरस्त व मजदूर विरोधी चरित्र का खुलासा कर दिया था लेकिन एक वर्ष बीतते-बीतते श्रम कानूनों के पूरे तंत्र को कांट-छांट कर विघटित करने व उन्हें पूरी तरह पूंजी के हित में ढालने की एक नयी योजना के साथ मोदी सरकार ने मजदूरों पर एक बहुत भीषण हमला बोल दिया है।

मोदी सरकार की नयी योजना के अनुसार 44 केन्द्रीय श्रम कानूनों को कांट-छांट कर एवं बेहद संकुचित कर 4 विस्तृत नियमावलियों (कोड) के तहत समेट दिया जायेगा जो क्रमशः औद्योगिक सम्बन्ध, वेतन, सामाजिक सुरक्षा एवं संरक्षा (सेफ्टी) एवं कल्याण के नाम से जानी जायेंगी। इसके अलावा लघु उद्योगों के लिए एक अलग कोड या नियमावली की बात की जा रही है।

औद्योगिक सम्बन्ध श्रम नियमावली विधेयक का मसौदा (ड्राफ्ट लेबर कोड ऑन इंडस्ट्रियल रिलेशन बिल, 2015) श्रम मंत्रालय द्वारा जारी किया गया है जिसे त्रिपक्षीय (सरकार, 'श्रमिक पक्ष' एवं उद्योगपति) वार्ता एवं मंत्रीमण्डल की मंजूरी के बाद मानसून सत्र में संसद में रखा जाना तय है। औद्योगिक सम्बन्धी नियमावली संसद में पास होने के बाद यह 'औद्योगिक सम्बन्ध कानून' के नाम से जाना जायेगा। गौरतलब है कि मंत्रालय ने इस मसौदे के लिए 26 मई तक सुझाव देने की तिथि निश्चित की थी। 'श्रमिक पक्ष' (केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों के प्रतिनिधियों) एवं उद्योगपतियों के संगठनों के साथ श्रम मंत्री बंडारू दत्तात्रेय ने 6 मई को एक वार्ता कर औद्योगिक सम्बन्धों से सम्बन्धित नियमावली के मसौदे पर चर्चा की है।

प्रस्तुत औद्योगिक सम्बन्धों से सम्बन्धित नियमावली के मसौदे में ट्रेड यूनियन एक्ट 1926, औद्योगिक विवाद अधिनियम 1947 और औद्योगिक नियुक्ति अधिनियम अथवा स्टैंडिंग आर्डर्स एक्ट 1946 को समाहित करने की योजना है। जाहिर है कि उक्त नए औद्योगिक सम्बन्ध कानून के अस्तित्व में आने के बाद उपरोक्त तीनों कानूनों का अस्तित्व खत्म हो जाएगा।

औद्योगिक सम्बन्धों से सम्बन्धित नियमावली के अतिरिक्त सरकार ने मार्च में वेतन सम्बन्धी नियमावली का मसौदा भी जारी कर दिया। इस मसौदे में न्यूनतम वेतन अधिनियम 1948; वेतन भुगतान अधिनियम 1936, बोनस संदाय अधिनियम 1965 तथा समान वेतन अधिनियम 1976 को एक ही कानून या नियमावली में समाहित करने का प्रस्ताव है। सामाजिक सुरक्षा संरक्षा (सेफ्टी) एवं कल्याण (वेलफेयर) से सम्बन्धित नियमावलियों के मसौदे निकट भविष्य में जारी होने की उम्मीद है। गौरतलब है कि कर्मचारी भविष्य निधि, कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम (ईएसआई एक्ट), मातृत्व लाभ अधिनियम, निर्माण मजदूरों से सम्बन्धित कानून एवं कर्मकार मुआवजा अधिनियम सहित लगभग 12 अधिनियमों को एक ही नियमावली- सामाजिक सुरक्षा के अंतर्गत लाने की बात की जा रही है। वेतन व सामाजिक सुरक्षा एवं संरक्षा के अलावा अन्य नियमावलियां इस वर्ष के अंत तक लागू किये जाने की बात की जा रही है।

बहरहाल औद्योगिक सम्बन्धों से सम्बन्धित नियमावली का मसौदा या इसके कुछ अंशों को मानसून सत्र में संसद में रखे जाने की पूरी योजना है।

'औद्योगिक सम्बन्ध' नाम से प्रस्तुत यह नियमावली अथवा लेबर कोड का मसौदा मजदूर वर्ग के लिए जहां बहुत घातक प्रावधान लिए हैं वहीं पूंजीपतियों अथवा उद्योगपतियों को उनके द्वारा बहुप्रतीक्षित छूटें देने का प्रस्ताव करता है। इसकी संस्तुतियां लगभग वही हैं जो दूसरे श्रम आयोग की रिपोर्ट(2002) में प्रस्तावित की गयी थीं और फिक्की जैसे पूंजीपतियों के संगठन जिसकी लंबे समय से मांग कर रहे थे।

प्रस्तावित 'औद्योगिक सम्बन्ध' कानून के अस्तित्व में आने के बाद 300 से कम श्रमिकों को नियोजित करने वाले कारखानों में मालिकों को ले ऑफ, छंटनी एवं बंदी (मिल बंदी) के मामले में सरकार की पूर्व अनुमति लेने से छूट मिल गयी है। प्रस्तावित कानून में मजदूरों को ले ऑफ, छंटनी व मिलबंदी के एक्ट में पहले के 15 दिन के मुकाबले 45 दिन का प्रति वर्ष के हिसाब से मुआवजा देने की बात की गयी है। वर्तमान में सरकार की पूर्व अनुमति के बगैर छंटनी व बंदी की छूट 100 श्रमिकों वाले उद्यमों को ही हासिल है।

इसके साथ प्रावधान यह भी है कि अगर प्रबंधन द्वारा मजदूर को कोई अन्य वैकल्पिक काम उपलब्ध कराने पर मजदूर उसे नहीं करता है तो वह मुआवजे का हकदार नहीं होगा। इसी तरह किसी अन्य जगह स्थानांतरित करने पर भी निश्चित समय पर वह ड्यूटी में हाजिर नहीं होता तो मुआवजे का हकदार नहीं होगा।

ले ऑफ के लिए दो माह की पूर्व सूचना देने का प्रावधान है। ले ऑफ की स्थिति में नियोक्ता को 50 प्रतिशत वेतन (मूल वेतन का) व महंगाई भत्ता देय होगा। यह भत्ता केवल उन्हीं मजदूरों या कर्मचारियों को देय होगा जिन्होंने मस्टर रोल रजिस्टर में 1 वर्ष की अवधि पूरी कर ली हो। 50 मजदूरों से कम तथा मौसमी (सीजनल) उद्यमों या व्यवसाय में नियुक्त श्रमिकों को किसी भी तरीके के मुआवजे से मुक्त कर दिया गया है। अगर नियोक्ता श्रमिकों द्वारा हड़ताल की स्थिति में ले ऑफ करता है, यानी अगर ले ऑफ हड़ताल के परिणामस्वरूप लागू होता है तो कोई मुआवजा देय नहीं होगा। जाहिर सी बात है कि अब नियोक्ता हड़ताल की अवधि, चाहे भले ही वह कानूनी मानदंडों के अनुरूप पूरी तरह वैध हो, के दौरान ले ऑफ घोषित कर किसी भी तरीके के वेतन या अन्य देय भुगतानों से बरी हो जायेंगे।

औद्योगिक सम्बन्धों वाली नियमावली में सबसे अधिक चोट यूनियन निर्माण पर की गयी है। अब तक किसी भी उद्यम के सात मजदूर यूनियन के लिए आवेदन कर सकते थे तथा यूनियन की कैबिनेट अथवा पदाधिकारियों में फैक्टरी या उद्यम से बाहर के लोग भी शामिल हो सकते थे। यूनियन निर्माण के आवेदन के लिए अब 10 प्रतिशत या न्यूनतम 100 श्रमिकों का आवेदन जरूरी होगा। 1000 श्रमिकों से अधिक के लिए यह संख्या 100 होगी जबकि जिन उद्यमों में श्रमिकों की संख्या का 10 प्रतिशत 7 से कम होगा वहां न्यूनतम आवेदकों की संख्या 7 रखी गयी है। इस नियमावली के अनुसार ट्रेड यूनियनों में अब कैबिनेट या पदाधिकारी अथवा सदस्य के रूप में किसी भी बाह्य व्यक्ति का प्रवेश निषिद्ध करना प्रस्तावित है। केवल असंगठित क्षेत्र की यूनियनों में दो व्यक्ति बाहरी हो सकते हैं। ट्रेड यूनियनों को राजनीति से मुक्त रखने के प्रावधान भी इस प्रस्तावित नियमावली में किए गए हैं। जाहिर है कि उपरोक्त सारे प्रस्तावों के मूल में ट्रेड यूनियन गठन की प्रक्रिया को बाधित करने व हतोत्साहित करने एवं यूनियनों की मोलतोल(बारगेनिंग) की शक्ति को कमजोर करने एवं मजदूरों की राजनीतिक व वर्गीय चेतना को कुंद करने के प्रयास करना निहित है।

ट्रेड यूनियनों पर नियंत्रण व दबाव के द्वारा उन्हें पूरी तरह पालतू या निष्प्रभावी बनाने के प्रयास भी उक्त प्रस्तावित नियमावली में किए गये हैं। चुनाव कराने या मांगी गयी जानकारीयों उपलब्ध कराने, रिटर्न दाखिल करने आदि के सम्बन्ध में भी निश्चित समय सीमा का उल्लंघन करने पर दंड, जुर्माने या यूनियन पंजीकरण रद्द करने की बातें प्रस्तावित नियमावली में की गयी हैं। यूनियन से मांगी गयी किसी जानकारी में तथ्यात्मक त्रुटि पाये जाने पर भी यूनियन पंजीकरण रद्द किया जा सकता है। किसी ट्राइब्यूनल की सिफारिश पर भी यूनियन पंजीकरण रद्द हो सकता है। यूनियनों को अपना रिकार्ड व अकाउंट हर समय तैयार रखना होगा तथा अनिवार्य तौर पर इसका ऑडिट कराना होगा। ऐसा

न होने पर भी यूनियन की मान्यता व पंजीकरण रद्द हो सकता है।

कुछ उद्यमों को रजिस्टर रखने व रिटर्न दाखिल करने सम्बन्धी श्रम कानून, जो कि लघु उद्योगों से सम्बन्धित हैं, में महत्वपूर्ण संशोधन करते हुए लघु उद्योगों/उद्यमों की परिभाषा का दायरा वर्तमान में दस श्रमिक से बढ़ाकर 40 करने की बात नियमावली में है। इसके मुताबिक अब 40 श्रमिकों तक के उद्यमों को रजिस्टर रखने व रिटर्न भरने से छूट देना प्रस्तावित है। गौरतलब है कि ये 40 श्रमिक स्थायी या मस्टर रोल वाले ही होंगे।

स्टैंडिंग आर्डर से सम्बन्धित नियमावली के हिस्से में भी मजदूरों का पक्ष कमजोर करने के प्रयास हुए हैं। स्टैंडिंग आर्डर के प्रावधान को 100 मजदूरों से कम वाले हर उद्यम के लिए अनिवार्य बना दिया गया है। स्टैंडिंग आर्डर के लिए मजदूर एवं मालिक पक्ष के बीच सहमति बनाने के लिए कार्यवाही (प्रोसीडिंग) के शुरू होने के बाद 12 माह का समय रखा गया है। यदि इस अवधि के दौरान मालिक व मजदूर पक्ष में कोई सहमति नहीं बनती तो मालिक अथवा नियोक्ता खुद इसे तैयार कर प्रमाणन के लिए नियुक्त अधिकारी (सर्टिफाइंग ऑफिसर) के पास भेज सकता है। नियोक्ता स्टैंडिंग आर्डर बनने (श्रमिक पक्ष की सहमति अथवा सर्टिफाइंग ऑफिसर के द्वारा पास करने) के बाद एक वर्ष की अवधि बीतने पर स्टैंडिंग आर्डर में जरूरत के मुताबिक सुधार (मोडिफिकेशन) कर सकता है। इस सम्बन्ध में श्रमिक पक्ष (निगोशिएटिंग एजेंट) 60 दिन के भीतर औद्योगिक ट्राइब्यूनल में आपत्ति दायर कर सकता है। ट्राइब्यूनल का फैसला दोनों के लिए बाध्यकारी होगा।

स्टैंडिंग आर्डर सम्बन्धी नियमावली में यौन उत्पीड़न रोकने सम्बन्धी प्रावधानों को कमजोर करने के प्रयास किए गए हैं। कार्यस्थल पर महिलाओं के यौन उत्पीड़न के रोकने के सम्बन्ध में पहले यौन उत्पीड़न के रोकथाम व निषेधकारी उपचार अधिनियम 2013 (प्रिवेंशन, प्रोहिबिशन एण्ड रिड्रेसल एक्ट 2013) के तहत इस सम्बन्ध में एक नियमावली में यौन उत्पीड़न के सम्बन्ध में जांच एक जांच अधिकारी द्वारा कराये जाने की बात कही गयी है। जाहिर बात है कि यौन उत्पीड़न के ज्यादातर मामलों में प्रबंधन व मालिकाना शामिल होते हैं। अब जांच अधिकारी नियुक्त करने का अधिकार प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से उनके पास होगा या वे अथवा उनका आदमी ही जांच कमेटी में होगा।

औद्योगिक सम्बन्धों की नियमावली में सबसे कठोर प्रावधान हड़ताल करने के सम्बन्ध में है। प्रस्तावित नियमावली में कहा गया है कि हड़ताल करने से पूर्व 6 सप्ताह का पूर्व नोटिस देना अनिवार्य होगा। ऐसा नहीं करने पर हड़ताल को अवैध माना जायेगा। वर्तमान में पूर्व सूचना या नोटिस देने की यह अवधि 2 सप्ताह या 14 दिन है।

इसी तरह हड़ताल की निर्धारित तिथि के बाद व समझौता अथवा संराधन वार्ता (आर्बिट्रेशन प्रोसीडिंग) के दौरान हड़ताल करने पर हड़ताल अवैध मानी जाएगी।

अवैध हड़तालों को रोकने हेतु दंड एवं अन्य दमनात्मक उपायों की सिफारिश भी नियमावली में की गयी है। अवैध हड़ताल को शुरू करने, जारी रखने पर किसी भी मजदूर को 20 हजार से 50 हजार जुर्माना अथवा 1 माह की सजा अथवा दोनों हो सकते हैं। इसके अलावा अवैध हड़तालों को आर्थिक सहयोग देने वाले व्यक्ति को भी 25,000 रुपये जुर्माने का प्रावधान है जिसे 50 हजार तक बढ़ाया जा सकता है। इसके लिए आर्थिक दण्ड के अलावा एक माह की सजा का प्रावधान प्रस्तावित नियमावली में है। मजदूरों अथवा कर्मचारियों द्वारा एक साथ सामूहिक तौर पर आकस्मिक अवकाश लेना भी अवैध हड़ताल माना जाएगा। 50 प्रतिशत से अधिक कर्मचारियों या मजदूरों द्वारा आकस्मिक अवकाश (सीएल) लेने पर अवैध हड़ताल मानी जायेगी। इसी तरह नियोक्ता द्वारा तालाबंदी से पूर्व 3 माह का नोटिस न देने पर उस तालाबंदी को अवैध माना जाएगा। 50 श्रमिकों से कम उद्यमों के लिए कोई नोटिस या पूर्व सूचना की शर्त से नियोक्ताओं को मुक्त रखा गया है। ले ऑफ व छंटनी के लिए भी नियोक्ता को दो माह का पूर्व नोटिस देना होगा। यहां भी 50 श्रमिकों से कम पर इस बात से नियोक्ता को छूट जारी रहेगी। अवैध तालाबंदी, ले ऑफ व मिलबंदी (क्लोजर) की स्थिति में नियोक्ता को न्यूनतम एक लाख के जुर्माने की बात कही गयी है जिसे अधिकतम 5 लाख तक बढ़ाया जा सकता है। इस सम्बन्ध में आरोपित होने के बाद भी अगर मालिक तालाबंदी जारी रखता है तो 5 लाख का जुर्माना किया जा सकता है जिसे 10 लाख तक बढ़ाया जा सकता है और न्यूनतम 1 माह की सजा दी जा सकती है। इसी तरह मालिकों द्वारा दूषित या गलत श्रम व्यवहार (अनफेयर लेबर प्रैक्टिस) को अमल में लाने पर उसे 50,000 से 1 लाख का जुर्माना या 1 माह की सजा का प्रावधान है। आरोपित होने पर गलत श्रम व्यवहार जारी रखने पर 1 लाख से 3 लाख का जुर्माना हो सकता है।

इसी तरह किसी समझौते या ट्राइब्यूनल के अवार्ड (फैसले) को न मानने पर 1 लाख से तीन लाख तक का जुर्माना हो सकता है तथा 1 माह की सजा भी हो सकती है। यह शर्त किसी भी व्यक्ति, मजदूर व नियोक्ता पर समान रूप से लागू होगी।

अगर कोई नियोक्ता इस नियमावली के अनुरूप सर्टिफाइड स्टैंडिंग आर्डर का उल्लंघन करता है तो उसे 1 लाख का जुर्माना हो सकता है जिसे दो लाख तक बढ़ाया जा सकता है। यह गलती दोबारा करने पर जुर्माना न्यूनतम 2 लाख से 4 लाख तक हो सकता है जिसके साथ एक माह की सजा भी हो सकती है।

ट्रेड यूनियनों के मामले में ट्रेड यूनियन की नियमावली से सम्बन्धित जानकारी, नोटिस या स्टेटेमेंट या अन्य आवश्यक सूचना में कोई गलती या त्रुटि पाये जाने पर न्यूनतम 10 हजार से 50 हजार तक का जुर्माना लगाया जा सकता है। गलती जारी रहने पर 100 रुपये प्रतिदिन के हिसाब से जुर्माना जारी रहेगा।

नियमावली दंडात्मक प्रावधानों से स्पष्ट है कि मालिक/नियोक्ता की आर्थिक हैसियत के अनुपात से ये बिल्कुल जुदा हैं। ये प्रावधान मजदूरों के लिए बेहद कठोर एवं मालिकों के प्रति बेहद नरम हैं। वैसे तो मालिकों पर दंडात्मक प्रावधान लागू व्यवहार में होते ही नहीं हैं और अगर लागू हों भी तो ये दंडात्मक प्रावधान नियोक्ताओं को अभयदान देने और 'गैरकानूनी' आचरण के लिए प्रोत्साहित करने वाले ही हैं।

औद्योगिक सम्बन्धों की नियमावली का एक महत्वपूर्ण हिस्सा वाद निपटारा संस्थाओं व प्राधिकरण से है। नयी व्यवस्था के तहत श्रम न्यायालय (लेबर कोर्ट) व संराधन आर्बिट्रेशन को खत्म करने की बात कही गयी है। इसके स्थान पर ट्राइब्यूनल अलग-अलग स्तर पर गठित किये जायेंगे। हरेक ट्राइब्यूनल कुछ मामलों (क्रिमिनल कोड प्रोसीजर 1973 की धारा 345, 348 एवं 1974 की धारा दो) के लिए अंतिम सिविल कोर्ट माने जाएंगे। यानी इन मामलों में ट्राइब्यूनल कोर्ट का फैसला अंतिम होगा। इसी तरह ऊपरी अदालतों या ट्राइब्यूनल कोर्ट में कोई ताजा सबूत या तथ्य नहीं पेश किए जा सकेंगे।

इसके अलावा औद्योगिक सम्बन्धों की नियमावली में यह व्यवस्था दी गयी है कि अगर किसी उद्यम के लिए कुछ नियम, शर्तें, अवार्ड या दंड इस हद तक कठोर हो जाते हैं कि उन्हें लागू करने से खुद उसके अस्तित्व पर खतरा आ जायेगा तो सरकार खुद हस्तक्षेप करके उस उद्यम या उद्यमियों को ऐसे किसी नियम, फैसले, अवार्ड या दंड से मुक्ति दे सकती है। मजदूरों के जीवन पर संकट की बात नियमावली के निर्माताओं के जेहन में नहीं आती है। खैर यह पूंजीपतियों की जान छुड़ाने का आखिरी हथकंडा है जो उनको पूरी तरह श्रम कानूनों को न लागू करने के मामले में निर्भयता देगा। इन मुख्य संशोधनों के अलावा सूक्ष्म स्तर पर या अप्रत्यक्ष स्तर पर अनेक ऐसे प्रावधान इस प्रस्तावित नियमावली में हैं जो मालिकों/नियोक्ताओं को मजदूरों का बेरोकटोक शोषण करने व मजदूरों के प्रतिरोध को कुचलने की ताकत देते हैं।

वेतन सम्बन्धी नियमावली में एक महत्वपूर्ण बदलाव राज्य सरकारों द्वारा इस सम्बन्ध में किसी हस्तक्षेप से उद्यमियों को राहत दिलाना है। अब नयी नियमावली के हिसाब से न्यूनतम वेतन राष्ट्रीय स्तर पर घोषित होगा जो पांच साल में ही बढ़ाया जायेगा।

कुल मिलाकर आजादी के बाद से या कहे कि भारत में लगभग 50 वर्ष के मजदूर आंदोलन के इतिहास में यह मजदूर वर्ग पर सरकार द्वारा जबर्दस्त हमला है। मजदूर वर्ग को इसका भरपूर जवाब देना होगा। अब संघर्ष के अलावा कोई रास्ता मजदूर वर्ग के पास नहीं है।

(साभार: 'नागरिक' वर्ष 18 अंक 13, 01-15 जुलाई, 2015)

प्रतिक्रियावाद की आंधी

भारत की एकाधिकारी पूंजी और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के गठजोड़ के जो नतीजे निकलने थे, वे सामने आने लगे हैं। केन्द्र में काबिज सरकार जहां तेजी से आर्थिक व श्रम सुधार के कार्यक्रम में लगी है वहां संघ और उसके अनुषंगी संगठन पूरे देश के हिन्दुत्वकरण में। सरकार और संघ की इस जुगलबंदी की चपेट में देश की हर संस्था आती जा रही है। संघ की पाठशाला में दोहराये जाने वाली बातें और कुतर्क आज टेलीविजन और अखबारों से प्रसारित हो रहे हैं। उन्हें युग सत्य के रूप में स्थापित किया जा रहा है।

संघ प्रमुख मोहन भागवत का स्थान अनौपचारिक तौर पर राष्ट्र प्रमुख का बनता जा रहा है। और अपनी इस हैसियत व प्रभाव का इस्तेमाल वे पूरे देश में कर रहे हैं। कुतर्क की इससे बड़ी मिसाल क्या हो सकती है कि वे कहते हैं कि हिन्दुस्तान में रहने वाला वैसे ही हिन्दू है जैसे जर्मन में रहने वाला जर्मनी। वह हिन्दोस्तानी नहीं है वह हिन्दू है।

भारत यूरोप के अधिकांश देशों की तरह एक राष्ट्र न होकर बहुराष्ट्रीय देश है। यहां विविध भाषा, बोली, नस्ल व राष्ट्रीयता व विभिन्न किस्म के धार्मिक विश्वास मानने वाले लोग रहते हैं। भारतीय समाज में जितनी विविधता है वह इसे एक महाद्वीपीय देश बना देती है। भारतीय समाज में रहने वाले सभी व्यक्तियों को हिन्दू कहना संघ व भाजपा के फासिस्ट एजेंडे को आगे बढ़ाना है। और यह बहुत स्वाभाविक है कि केन्द्र में सत्ता हासिल करने के बाद संघ के लोगों को यही करना था। इससे पहले भी 1998 में वाजपेयी की सरकार में भी ऐसा हो रहा था। उस समय देश की सभी प्रमुख संस्थाओं का संघीकरण किया गया और गुप्तचर ब्यूरो (आई.बी.) तो एक तरह से संघ का ही एजेंडा लागू करने में लगा था।

नरेंद्र मोदी की सरकार ने 60 दिनों में जो कामकाज किया है, उसके दो हिस्से हैं। पहला एकाधिकारी पूंजी के हितों को साधने के लिए तेजी से आर्थिक सुधार करना और दूसरा इन सुधारों के विरुद्ध उठने वाली आवाजों की जमीन को कुंद करने के लिए समाज का तेजी से हिन्दुत्वकरण करना।

आर्थिक सुधार के विस्तृत एजेंडे में तमाम किस्म के सुधार शामिल हैं। इसके तहत तेजी से निजीकरण, उदारीकरण, वैश्वीकरण की नीतियों को लागू करना, श्रम कानूनों में तेजी से सुधार, टैक्स व्यवस्था में परिवर्तन (जी.एस.टी. लागू करना) प्रशासनिक व्यवस्था को पूंजीपतियों के हितों के अनुरूप करना आदि शामिल हैं। ये सुधार भारत की वर्तमान राजनैतिक व सामाजिक व्यवस्था में ऐसे सुधार हैं जिनकी मांग लंबे समय से देशी व विदेशी एकाधिकारी पूंजी के पैरोकार करते रहे हैं। 1991 से जारी आर्थिक सुधार बीस साल बाद इस पूंजी की चाहत के अनुरूप पूर्ण रूप से लागू नहीं हो सके। इसमें जहां एक ओर शासक वर्ग की हिचकिचाहट, आपसी अंतरविरोध भूमिका निभा रहे थे वहीं दूसरी ओर उससे कहीं अधिक विरोध की संभावना शासित वर्ग से थी। शासित वर्ग ने पिछले बीस वर्षों में कदम-कदम पर इन नीतियों को विरोध किया। मजदूरों, किसानों, आदिवासियों के संघर्ष पूरे देश में समय-समय पर फूटते रहे हैं और इसने शासक वर्ग की योजनाओं के लागू होने में गतिरोध का काम किया।

यू.पी.ए. सरकार के दस साल के अंतिम वर्षों में एकाधिकारी पूंजी की मुख्य शिकायत ही यह थी कि सरकार काम ही नहीं करती। उलझी रहती है। फंसी रहती है। इसके कारण सत्ता के दो केन्द्र गठबंधन सरकार, राजनीतिक निर्णय लेने में अक्षमता आदि को गिनाया गया। मोरी सरकार अब उन सब दुर्गुणों से मुक्त मानी जा रही है। अतः वह कम से कम अपने शुरुआती दिनों में वह सब कुछ करती दिखना चाहती है जो देशी-विदेशी एकाधिकारी पूंजी चाहती है। वह यू.पी.ए. सरकार की कमियों-गलतियों आदि से सीखकर एक ऐसा शासन करना चाहती है जो कम से कम डेढ़-दो दशक चले।

मजदूरों, किसानों, आदिवासियों आदि शोषित-उत्पीड़ितों के संघर्ष जन्म न ले सकें। उनकी धार कुंद पड़ जाये। कोई आवाज प्रतिरोध-अवरोध की न उठे, इसके लिए वह भारतीय समाज में हिन्दुत्वकरण के एजेंडे को आगे बढ़ा रही है। मंत्री आये दिन विवादास्पद बयान देते हैं और संघ भारतीय समाज के यथार्थ और इतिहास की मनमाफिक व्याख्या करता है। अपने घृणित हिन्दू फासिस्ट एजेंडे को आगे बढ़ाने के लिए हर संस्था, हर संसाधन का इस्तेमाल कर रहा है।

एकाधिकारी पूंजी और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का घृणित गठजोड़ भारत में क्या-क्या गुल खिलायेगा इसका सहज अनुमान पिछले समय से लगाया जा सकता है। नरेंद्र मोदी का चुनाव लड़ने का ढंग व सरकार बनाने के बाद के तेवर अपनी कहानी आप कह रहे हैं।

भारत ही नहीं पूरी दुनिया में एकाधिकारी पूंजी के हितों के अनुसार राजनैतिक व्यवस्था के होने व समाज से बहुत मजबूत प्रतिकार के न होने के बावजूद वह आशंकित व भयभीत है। वह अपने किलों की सुरक्षा के लिए हर वह कदम उठा रही है जो वह उठा सकती है। पूंजीवादी राज्य इन किलों की सुरक्षा के लिए अभूतपूर्व ढंग से हस्तक्षेप कर रहे हैं और आम मजदूरों व मेहनतकशों पर अपना शिकंजा हर जायज-नाजायज ढंग से कस रहे हैं। परंतु यह सब कुछ काम नहीं आ रहा है। विश्व आर्थिक संकट बड़े पैमाने के राजकीय हस्तक्षेप के बावजूद खत्म होने का नाम नहीं ले रहा है। मंदी का काल खिंचता ही चला जा रहा है। साम्राज्यवादी देशों के बीच संदेह, तनाव व तनातनी का माहौल बढ़ रहा है। और सबसे बढ़कर पूरी विश्व की जनता शासकों के भारी दमन व विभाजनकारी प्रयासों के बीच उठ खड़ी हो रही है। वह मुखर है। वह शासकों की मनमर्जी होने नहीं दे रही है। मोदी सरकार का सामना इक्कीसवीं सदी की भारत की जनता से होने जा रहा है। भारत की महान जनता को संघ की फासिस्ट धुन पर नचाना चाहता है परंतु उसे मुंह की खानी पड़ेगी। पर प्रतिक्रियावाद की इस आंधी का मुकाबला शासक वर्ग की अन्य पार्टियों व संगठनों के बस की बात नहीं है। इसका मुकाबला करने की क्षमता व संभावनाशीलता स्वयं जनता में ही है। भारत के मजदूर, किसान, उत्पीड़ित-शोषित जनों के उठ खड़े होते ही यह आंधी छू-मंतर हो जायेगी।

वैसे नरेंद्र मोदी सरकार के साथ दुर्भाग्य भी जुड़ा हुआ है। वह जिन वायदों के साथ आयी थी उसका अंश भी पूरा करना उसके बस की बात नहीं है। महंगाई, बेरोजगारी, गरीबी लगातार बढ़ रही है। भ्रष्टाचार का पहला मामला आते ही उसकी बहुत फजीहत होनी है। 'अच्छे दिन' का वायदा करने वाला बिसूरने लगा है कि 60 साल का राज करने वाले 60 दिन में हिसाब मांग रहे हैं, कोई हिसाब न मांग सके, कोई प्रतिरोध न कर सके। कोई एकजुट न हो सके इसके लिए वह हिन्दुत्वकरण के एजेंडे को आगे बढ़ा रहे हैं परंतु यह सब बीसवीं सदी की चालें हैं जो इक्कीसवीं सदी में खास काम नहीं कर पायेंगी। आंधी में बहुत आवेग होता है, बहुत विनाश की क्षमता होती है परंतु अंत में वह बिखर जाती है, नष्ट हो जाती है।

(साभार: 'नागरिक' वर्ष 17 अंक 16, 16-31 जुलाई, 2014)